प्रकाशक—
सन्मति-ज्ञान-पीठ,
लोहामण्डी, आगरा।

प्रथम बार
जनवरी १९५६
मूल्य सवा दो रुपया

मुद्रक—
पं० नागेन्द्रनाथ शर्मा गोस्वामी,
दी कॉरोनेशन प्रेस,
फुलट्टी बाजार,
आगरा।

प्रकाशक की ओर से—

'सन्मति-ज्ञान-पीठ' के जिस अमर प्रकाशन की पाठक-गण चिरकाल से अपलक प्रतीक्षा कर रहे थे; आज उसे उनके कर कमलों में अर्पित करते हुए हर्ष एवं उल्लास से मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है। 'सन्मति प्रकाशनों' में इस प्रकाशन का सर्वोपरि स्थान है—ऐसा मैं अधिकार की भाषा में कह सकता हूँ।

वैज्ञानिक नीलाम्बर के नीचे आज सैकड़ों वैज्ञानिक पृथिवी को पढ़ रहे हैं और खोज कर रहे हैं कि पृथिवी के अन्तर में कोयला कहाँ है? लोहा कहाँ छिपा पड़ा है? सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरात की खानें कहाँ दबी पड़ी हैं? पैट्रोल और तेल के स्रोत कहाँ बह रहे हैं? सैकड़ों वैज्ञानिक आकाश को पढ़ रहे हैं और देख रहे हैं कि कौन ग्रह कब उदय हो रहा है और कब अस्त हो रहा है? आकाश-मंडलमें कौन-सा ग्रह बना जा रहा है और संसार पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होने वाली है? सैकड़ों वैज्ञानिक समुद्र को पढ़ रहे हैं और पानी की एक-एक बूँद को तोड़कर देखा जा रहा है कि उसमें कितनी परम शक्ति है? उसमें कितनी विद्युत शक्ति है?

इस प्रकार मनुष्य के द्वारा आज पृथिवी को पढ़ा जा रहा है, आकाश को खोजा जा रहा है और समुद्र को मथा जा रहा है। पर खेद है कि यह सब कुछ करके भी आज का मनुष्य अपने-आप को भूल रहा है और सब-कुछ पढ़कर भी मनुष्य आज अपने विषय में ही अनभिज्ञ है। यह कैसी विचित्र लीला है आज के मनुष्य की! जीवन की यह कैसी विडम्बना है कि सब-कुछ देख-पढ़कर भी मनुष्य अपनी ओर से आँखें बन्द किये चल रहा है! और, जब तक मनुष्य अपने-आपको न पढ़े अपने-आपको न खोजे; तब तक इस बाहर की पढ़ाई का अर्थ भी क्या है जीवन में?

'अमर-वाणी' के स्वर्णिम पृष्ठों पर कवि श्री जी जीवन के एक सच्चे वैज्ञानिक बनकर चमके हैं। मानव जीवन का उन्होंने गहरा अध्ययन और मन्थन किया है। जीवन के अन्तस्तल में पैठकर मनुष्य की आत्मा को उन्होंने खोजा है, उसकी वृत्तियों को उन्होंने परखा है और उसकी भावनाओं को उन्होंने पकड़ा है।

वस्तुत 'अमर-वाणी' के रूप में उन्होंने मानवीय जीवन का सर्वांगीण विश्लेषण हमारे सामने रख छोड़ा है। क्या अध्यात्म, क्या धर्म, क्या समाज, क्या राष्ट्र, क्या संस्कृति और क्या सभ्यता, जीवन का कोई भी पहलू उनके सूक्ष्म चिन्तन से असम्पृक्त नहीं रह पाया है।

और, इस दृष्टि-कोण से 'अमर-वाणी' मानव-जीवन का एक बोलता हुआ नया भाष्य है, महाभाष्य है। और अधिक स्पष्ट शब्दों में कह दूँ, तो 'अमर-वाणी' नये युग के नये मानव के लिए जीवन का एक ऐसा नया शास्त्र है, जो जाति, वर्ग, सम्प्रदाय और पथ के सब बाधा-बन्धनों से दूर-अति दूर रहकर मानव मात्र को जीवन की सच्ची कला सिखलाता है, जीवन की सच्ची दिशा की ओर इंगित कर रहा है।

काश, आज का मनुष्य उस कला को सीख सके, उस मानवीय विज्ञान को जीवन की प्रयोगशाला में ढाल सके और सच्चे अर्थों में मनुष्य बन सके।

आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि पाठकों को नव जीवनोदय के लिए हमारा यह प्रकाशन एक अमोघ वरदान सिद्ध होगा।

रतनलाल जैन मीतल,
मंत्री, सन्मति ज्ञान-पीठ,
आगरा।

परिचय

संस्थाओं तथा परीक्षाओं के आवेदन-पत्र भरते समय धर्म का खाना देख कर मेरे मन में कई बार आया—क्या मनुष्य के लिए जैन बौद्ध सनातनी मुसलमान या ईसाई बनना जरूरी है ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि हम इनमें से कुछ न हों और फिर भी मनुष्य बने रहें ? मनुष्य ने मानवता को आँकने के लिए कुछ साँचे बनाये और सारी मानवता को उनमें भरने का प्रयत्न किया। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो उसका असली स्रोत कभी किसी साँचे में बद्ध नहीं हुआ। मानवता साँचों के सहारे जीवित नहीं रहती किन्तु साँचे मानवता के सहारे जीवित रहते हैं। उपनिषदों में आता है कि ब्रह्म ने आकाश और पृथ्वी को व्याप्त कर लिया फिर भी दस अंगुल ऊपर उठा रहा। जो बात ब्रह्म के लिए है वही मानवता और सत्य के लिये भी है।

साहित्य के लिये भी यही बात है। जब कोई नई रचना सामने आती है तो हम उसको दर्शन धर्मशास्त्र काव्य, इतिहास आदि धाराओं में सीमित करके देखना चाहते हैं। हम उन महाकवियों को भूल जाते हैं जो किसी धारा में बहना स्वीकार नहीं करते और इसीलिए सभी धाराओं

से अधिक निर्मल है। हम वृक्ष की वर्तमान शाखाओं को गिनकर समझ लेते हैं कि सारे वृक्ष को जान लिया। उस मूल को भूल जाते हैं जहाँ से शाखायें सतत् प्रस्फुटित होती रहती हैं।

'अमरवाणी' वह धर्मग्रन्थ है जो जैन, बौद्ध आदि सम्प्रदायो मे विभक्त नहीं हो सकता। मानवता का वह सन्देश है जो किसी साँचे मे नहीं ढल सकता। वह साहित्य है जो वर्तमान धाराओं मे परिगणित नहीं हो सकता। वह विन्दु है जो धारा वनकर वहना पसन्द नहीं करता। वृक्ष का वह स्कन्ध है जहाँ अनेक शाखायें अकुरित हो रही हैं।

एक सन्त के मन मे समय समय पर जो विचार आये 'अमरवाणी' उन्हीं का संग्रह है। जो व्यक्ति पथ के अन्त तक दूसरे की अँगुली पकड कर चलना चाहते हैं, अपनी आँखों से कुछ काम नहीं ले सकते, उन्हें 'अमरवाणी' मे अधूरापन प्रतीत होगा। किन्तु जो केवल मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते है, जो अँधेरे मे चलने के लिए केवल एक दीपक की आकांक्षा रखते हैं, उन्हे इसमे सब-कुछ मिल सकेगा।

जब ग्रन्थकार अध्ययन की भूमिका से उठकर अनुभव की भूमिका पर आ खड़ा होता है तभी ऐसे वाक्यों का उद्गम होता है। आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध मे ऐसे ही फुटकर वाक्यों का वाहुल्य है। किन्तु वे इतने जीवन-

स्पर्शी हैं कि विशाल ग्रन्थों से भी अधिक कह जाते हैं। वे अपने आप में पूर्ण हैं। बड़े से बड़ा ग्रन्थ उनकी तुलना में छोटा है। विशाल वट-वृक्ष की शाखायें पत्ते, स्कन्ध आदि सब एकत्रित कर दिये जायें फिर भी बीज उनसे बड़ा है। 'अमरवाणी' उन्हीं बीजों का संग्रह है। यही इसका परिचय है।

कवि अमरचन्द जी महाराज सन्त हैं कवि हैं और आलोचक भी हैं। केवल शाब्दिक रचना के नहीं किन्तु समाज और धर्म के भी। उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से जिन सत्यों का साक्षात्कार किया वे इस संग्रह में सम्मिलित हैं।

वे कहते हैं—"मनुष्य के सामने एक ही प्रश्न है अपने जीवन को 'सत्यं शिवं और सुन्दरं' कैसे बनाये। उद्दाम लालसाओं की तृप्ति के लिए पागल बना हुआ मनुष्य क्या इस प्रश्न को समझने का प्रयत्न करेगा। जिस दिन यह प्रयत्न प्रारम्भ होगा वह विश्वमंगल का प्रथम प्रभात होगा।

प्राचीन काल से समस्त विश्व शान्ति के लिए जो उपाय बरतता आ रहा है। जो धनवान है उसे धन सम्पत्ति या भोगविलास के प्रलोभन देकर शान्त करता रहा है और जो निर्बल है उसे तलवार दिखाकर। किन्तु इससे शान्ति कभी हुई नहीं। शान्ति का असली उपाय है अपनी आवश्यकतायें घटा कर दूसरे के अभाव की पूर्ति करना। यदि टीला अपनी उभरी हुई मिट्टी से पास के खड्डे को अपने

आप भर दे तो उसे आँधी और तूफ़ानों का कोई भय न रहेगा। शान्ति का सच्चा मार्ग भी यही है।

मनुष्य ने समुद्र के गम्भीर अन्तस्तल का पता लगाया, हिमालय के उच्चतम शिखर पर चढ कर देखा, आकाश और पाताल की सन्धियो को नाप लिया, परमाणु को चीर कर देखा, किन्तु वह अपने आपको नहीं देख सका। अपने पड़ोसी को नहीं देख सका। दूरबीन लगाकर नये नये नक्षत्रो को देखने वाला पडोसी की ढहती हुई झोपडी को नहीं देख सका। चन्द्रलोक की सैर करने वाला अपने प्रासाद के पीछे छिपी हुई अन्धेरी गली की ओर कदम न बढा सका। इसको विकास कहा जाय या ह्रास? ग्रन्थकार मानव से इस प्रश्न का उत्तर चाहता है।

आज का मन्दिर ईश्वर का पूजा स्थान नहीं, किन्तु उसका कारावास है। आज की मस्जिद अल्लाह का इबादतखाना नहीं, उसकी कैद है। इन कैदखानो की दीवारो को गिरा दो। ईश्वर और खुदा को खुला साँस लेने दो। उन्हे दिल के आसन पर बैठाकर पूजो। सम्प्रदायवाद पर कितना मार्मिक प्रहार है?

ग्रन्थकार जहाँ वैज्ञानिकों को कोसता है, वहाँ तर्क की शुष्क समस्याओं मे उलझे हुए दार्शनिको को भी नहीं छोडता। वह गला फाडकर कहता है—

"दार्शनिको! भूख, गरीबी और अभाव के अध्यायो से

मरी हुई इस मूकी जनता की पुस्तक को भी पढ़ो। ईश्वर और जगत् की पहेलियाँ सुलझाने से पहले इस पुस्तक की पहेलियों को सुलझाओ।

विश्वमंगल का मार्ग बताते हुए अमरमुनि एक नई घोषणा का आविष्कार करते हैं—"भारत के प्रत्येक नर नारी को प्रतिदिन प्रातः और सायं यह गम्भीर घोषणा करनी चाहिए कि मानव और मानव के बीच कोई भेद नहीं। मानवमात्र का जीवनविकास के क्षेत्र में सर्वत्र समान अधिकार है।" "मैं को समाप्त करके 'हम' को इतना विशाल बना दो कि सारा विश्व उसमें समा जाय।" इसी के लिए वे कहते हैं—"बूंद नहीं सागर बनो। बूंद का जीवन अत्यन्त क्षुद्र है किन्तु समुद्र में मिलने पर वही अमर बन जाती है। अनादि काल से सूर्य की किरणें उसे सुखाने का प्रयत्न कर रही हैं किन्तु वह इतना ही पूर्ण है, जितना पहले था।

जैन-साधना का मूलमन्त्र सामायिक अर्थात् समता की आराधना है। उसकी विभिन्न व्याख्याओं द्वारा मुनि श्री ने जीवन-विकास के सभी अंगों का निष्कर्ष बता दिया है। अन्तरंग और बहिरंग जीवन में समता धर्म का सवरण है अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में मानसिक सन्तुलन सफलता का मूलमन्त्र है शत्रु और मित्र पर समबुद्धि रखते हुए सत्य को सामने रखकर बढ़ते जाना कर्तव्य का

मूलमन्त्र है जो भगवान् कृष्ण द्वारा गीता में विस्तार-पूर्वक बताया गया है। दुख की अपेक्षा भी सुख में समभाव रखना अधिक कठिन है। जो व्यक्ति त्याग और तपस्या के द्वारा बल प्राप्त करता है, तेज का सचय करता है, वही अधिकारारूढ होने पर किस प्रकार समता को खो देता है और परिणामस्वरूप निस्तेज एव निर्वीर्य हो जाता है, प्रतिदिन का इतिहास इसका उदाहरण है। रावण से लेकर कांग्रेस का वर्तमान पतन इसी सत्य को प्रकट करता है।

मुनि श्री स्पष्ट शब्दों में कहते है "हमारा सुन्दर भविष्य आपसी भाई-चारे पर निर्भर है। इस विशाल पृथ्वी पर एक कोने से दूसरे कोने तक बसे हुए मानव-समूह में जितनी अधिक भ्रातृभावना विकसित होगी उतनी शान्ति और कल्याण की वृद्धि होगी।"

भारत की परम्परा यथार्थवादी है। वहॉ सत्य केवल आदर्शवाद की बात नहीं है, अपितु एक वास्तविकता है। और वह शुभ भी है और अशुभ भी। पुण्य भी सत्य है और पाप भी सत्य है। दैवी सम्पदायें भी सत्य हैं और आसुरी भी। अत सत्यमात्र उपादेय नहीं हो सकता। इसलिए मुनिश्री सत्य को तभी उपादेय बताते है जब उसके साथ शिव भी हो।

अहिंसा का स्वरूप बताते हुए आप लिखते हैं— "अहिंसा, साधना-शरीर का हृदय भाग है। वह यदि

जीवित है तो साधना जीवित है, अन्यथा मृत है।" उनकी अहिंसा निष्क्रिय नहीं किन्तु सक्रिय है। वे कहते हैं— 'तलवार मनुष्य के शरीर को झुका सकती है, मन को नहीं। मन को झुकाना हो तो प्रेम के अस्त्र का प्रयोग करो।"

"जो तलवार से ऊँचे उठेंगे वे तलवार से ही नष्ट हो जायेंगे।" ईसा के इस वाक्य को उद्धृत करके मुनि श्री ने ईसाई तथा जैन दोनों धर्मों के मर्म को एक ही शब्द में प्रकट कर दिया है।

जीवन की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं—"चलना ही जीवन है।" चाहे व्यक्ति हो या समाज धर्म हो या राष्ट्र जो चल रहा है, समय के साथ कदम बढ़ाये जा रहा है, जीवित है। जहाँ अटका वहीं मृत्यु है। यदि जीवन में सफलता प्राप्त करनी है तो विश्वास प्रेम और बुद्धि को साथ लेकर चलो। फिर प्रत्येक कार्य में आनन्द आयेगा। समस्त जगत रसमय हो जायेगा। कठिनाइयों के जूझने में भी आनन्द आयेगा। फिर असफलता का प्रश्न ही खड़ा नहीं होता। यही सफलता का मूलमन्त्र है।

मानव सिद्धि से पहले प्रसिद्धि की कामना करता है— यही उसकी भूल है। प्रसिद्धि तो सिद्धि का आनुषंगिक फल है जैसे गेहूँ के साथ भूसा। गेहूँ उगेगा तो भूसा अपनेआप मिल जायगा। अकेला भूसा प्राप्त करना चाहोगे तो

सारा प्रयत्न निष्फल हो जायेगा।

मनुष्य-जीवन की विषमताओं और द्वन्द्वों से परिभूत होकर कष्टों का अनुभव करता है। यदि उन सब में सम-रसता का अनुभव करना है तो ऊँचे उठकर देखने की आदत डालनी चाहिये। कुतुब-मीनार पर चढकर मुनि श्री ने यही अनुभव किया। अर्थात् अभेदानुभूति का मूल-मन्त्र है—दूर रहकर तटस्थ वृत्ति से देखना।

घास को आग का डर हमेशा बना रहता है, किन्तु सोने को कोई डर नहीं होता। वह तो आग मे पड़कर और निखरता है। चोटें खाकर और गलकर नया सुन्दरतर रूप ले लेता है। मानव जीवन के लिए कितना मार्मिक सन्देश है। प्रतिज्ञा जीवन-विकास का अनिवार्य अङ्ग है। किन्तु वह तभी, जब उसे पूरी तरह निभाया जाय। प्रतिज्ञा लेकर तनिक सी प्रतिकूलता आने पर तोड़ देना जीवन के खोखलेपन को सूचित करता है। 'आन लो और उस पर अडे रहो' यही जीवन का तत्त्व है।

जीवन व्यवहार आदान-प्रदान पर चलता है। प्रदान बिना का आदान शोषण है, आदान बिना का प्रदान देवत्व है। मानवता में दोनों का सन्तुलन होता है। गाय की सेवा करके उससे दूध प्राप्त करना व्यवहार है। बिना कुछ दिये लेना अपहरण या अत्याचार है।

जीवन-संगीत के दो स्वर हैं—कठोरता और मृदुता।

जो व्यक्ति इन दोनों का ठीक प्रयोग करना जानता है, वही मधुर ध्वनि निकाल सकता है।

हृदय के अन्तरतम से वे पुकार कर कहते हैं— "यदि किसी को हँसा नहीं सकते तो किसी को रुलाओ मत। किसी को आशीर्वाद नहीं दे सकते तो किसी को शाप तो न दो।"

संसार को विष समझ कर भागने वालों से वे कहते हैं—"भागना जीवन की कला नहीं कायरता है। कला तो विष का अमृत बना देने में है। साधक का जहर मर जाय तो वही संजीवनी बन जाता है।"

मुनि श्री की परिभाषा में जीवन का अर्थ साँस लेना नहीं है। जीवन का अर्थ है दूसरों को अपने अस्तित्व का अनुभव कराना। वह अनुभव ईंट-पत्थरों के ढेर खड़े करके या शोषण करके नहीं कराया जा सकता। इसका उपाय है हम दूसरों के लिए साँस लेना सीख लें। अपने लिए सभी साँस लेते हैं किन्तु जीवित वह है जो दूसरों के लिए साँस लेता है।

'जो विकारों का दास है वह पशु है, जो उन्हें जीत रहा है वह मनुष्य है, जो अधिकांश जीत चुका है वह देव है और जो सदा के लिए जीत चुका है वह देवाधिदेव है।" जीवन-विकास का उपरोक्त क्रम कितना स्पष्ट और प्रेरक है।

मानव को सम्बोधित करके वे कहते है—"मानव ! तेरा अधिकार कर्तव्य करने तक है फल तक नहीं। तू जितनी चिन्ता फल की रखता है उतनी कर्तव्य की क्यों नहीं रखता।" मानव जिस दिन उपरोक्त सन्देश को समझ लेगा, कष्टों से छुटकारा पा जायेगा।

मानव जीवन का ध्येय बताते हुए वे चिरन्तन सत्य को नगारे की चोट के साथ दोहराते है—"मानव जीवन का ध्येय त्याग है, भोग नहीं श्रेय है, प्रेय नहीं। भोगलिप्सा का आदर्श मनुष्य के लिए घातक सदैव घातक है औररहेगा।" उपदेश पुराना है किन्तु मानव ने अभी तक सुना कहाँ है?

मुनि श्री को पूर्ण विश्वास है—जिस प्रकार धरती के नीचे सागर वह रहे है। पहाड़ की चट्टान के नीचे मीठे झरने है उसी प्रकार स्वार्थी मन के नीचे मानवता का अमर स्रोत वह रहा है। आवश्यकता है, थोडा सा खोद कर देखने की।

एक बूंद ने यदि किसी प्यासे रजकण की प्यास बुझा दी तो वह सफल हो गई, वह धन्य हो गई। सफलता का रहस्य आधिक्य मे नहीं, किन्तु उत्सर्ग मे है। उत्सर्ग कोई छोटा या बड़ा नहीं होता।

अवमानव और महामानव मे क्या भेद है? इसका उत्तर देते हुए आप एक कसौटी बताते है। अवमानव उक्ति प्रधान होता है, उसके पास बातें अधिक होती है और काम

कम। महामानव क्रिया प्रधान होता है, उसके पास काम अधिक होता है और बातें कम।

महामानव— महानता की पगडंडी बताते हुए आप कहते हैं— 'महानता की पगडंडी फल फूलों से सजे उद्यानों में से होकर नहीं जाती। वह तो जाती है—काँटों में से झाड़ झंखाड़ों में से चट्टानों और तूफानों में से। वह वह पगडंडी है जहाँ मृत्यु अपयश और भयङ्कर यातनाएँ पग-पग पर आह्वान करती रहती हैं। और जब आप अपने लक्ष्य पर पहुँच जाँय तो सकता है फिर भी काँटे ही मिलें। एक तत्त्ववेत्ता ने कहा है —

'प्रत्येक महापुरुष पत्थर मारे जाने के लिए है। उसके भाग्य में यही बदा होता है।"

साधारण पुरुष वातावरण से बनते हैं। परन्तु महापुरुष वातावरण को बनाते हैं। समय और परिस्थितियाँ उनका निर्माण नहीं करतीं परन्तु वे समय और परिस्थिति का निर्माण करते हैं। महापुरुष की परिभाषा है "युगनिर्माता।

जैन परम्परा में महामानव ऊपर से नहीं उतरते। मानव ही परिश्रम और साधना द्वारा महामानव बनता है। आत्मा ही अपने स्वरूप को प्रकट करके परमात्मा बन जाता है। इसी को प्रकट करते हुए आप लिखते हैं —"मनुष्यता के स्वस्थ विकास की पूर्णकोटि ही भगवान् का परमपद है।"

आपकी महामानव की परिभाषा कितनी तलस्पर्शी है —

यही क्षण महान् हो जाता है, अन्यथा यह काल की अनन्त धारा का क्षुद्रतम अंश ही है। अवसर की प्रतीक्षा में बैठे रहने वाले अकर्मण्यों के सामने उपरोक्त तत्त्व का मर्म रखते हुए वे लिखते हैं —

'साधारण मनुष्य अवसर की खोज में रहते हैं—कभी ऐसा अवसर मिले कि हम भी कुछ करके दिखायें। इस प्रकार प्रतीक्षा में सारा जीवन गुजर जाता है परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता।

परन्तु महापुरुषों के पास अवसर स्वयं आते हैं। आते क्या हैं वे छोटे से छोटे नगण्य अवसर को भी अपने काम में लाकर बड़ा बना देते हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण महत्त्वपूर्ण है, यदि उसका किसी महत्वपूर्ण कार्य में विनियोग किया जाय।"

लोग यौवन और बुढ़ापे का सम्बन्ध शरीर से मानते हैं। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो उनकी यह धारणा गलत है- मन की क्षीणता शरीर की क्षीणता की अपेक्षा अधिक भयङ्कर होती है। नित्य नवतरंगित रहने वाला उल्लास ही तो यौवन है और वह होता है मन में शरीर में नहीं।

पुरुषार्थी को प्रेरणा देते हुए वे कहते हैं —"यदि तू अपने अन्दर की शक्तियों को जागृत करे तो सारा भूमण्डल तेरे एक कदम की सीमा में है। तू चाहे तो घृणा को प्रेम में द्वेष को अनुराग में अन्धकार को प्रकाश में मृत्यु को जीवन में

किवहुना, नरक को स्वर्ग मे बदल सकता है।"

भावना साधक को ठीक मार्ग पर आगे बढने के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं —"परमात्मपद पाना तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। ससार की कोई भी शक्ति ऐसी नहीं जो तुम्हे अपने इस पवित्र अधिकार से वचित कर सके।"

श्रद्धा के बिना साधना निष्प्राण है। जितना शिव और शव मे अन्तर है उतना ही अन्तर श्रद्धासहित और श्रद्धा रहित साधना मे है। पहली शिव है और दूसरी शव। जैन परम्परा मे साधना का प्रारम्भ सम्यक् श्रद्धा से होता है।

जिस प्रकार शरीर का जीवन साँस पर अवलम्बित है, साँस चल रहा है तो जीवन है और बद हो गया तो मृत्यु है। इसी प्रकार साधना-जीवन विश्वास पर अवलम्बित है। "विश्वास जीवन है और अविश्वास मृत्यु। विश्वास मानव जीवन मे सबसे बडी शक्ति है। विश्वासी कभी हारता नहीं, थकता नहीं, गिरता नहीं, मरता नहीं। विश्वास अपने आप में अमर औषधि है।"

"अपने आप में विश्वास करना ही ईश्वर मे विश्वास रखना है। जो अपने आप में अविश्वस्त है, दुर्बल है, कायर है, साहसहीन है, वह कहीं आश्रय नहीं पा सकता। स्वर्ग के असख्य देवता भी मन के लगड़े को अपने पैरो पर खड़ा नहीं कर सकते।"

आदर्श की परिभाषा करते हुए आप लिखते हैं —"आदर्श

वह जो जीवन की गहराई में उतर कर व्यवहार में आचरण का स्वरूप ग्रहण कर ले।" जो आगम केवल सिद्धान्त बना रहता है जीवन व्यवहार में नहीं उतरता उसका होना न होना बराबर है।

श्रद्धा की चर्चा करते हुए आप कहते हैं —"श्रद्धाहीन अविश्वासी का मन वह मरुभूप है जहाँ मोह, विषाद और भ्रम विषम चिन्तन पद्धतियाँ और संघर्ष पैदा होते रहते हैं।' वास्तव में श्रद्धा वह सिंचन है जो इन सब उद्दंड जन्तुओं का अन्त करता है। ये सब अश्रद्धा में ही पनपते हैं।

श्रद्धा का प्रतिपादन करते समय मुनि श्री तर्क को भूलते नहीं। आप कहते हैं- 'तर्कहीन श्रद्धा अन्धानुकरण व अन्धकार में हास देती है और श्रद्धाहीन तर्क अन्त सारहीन विकल्प तथा प्रति-विकल्पों की मरुभूमि में भटका देता है। अतः श्रद्धा की सीमा तर्क पर और तर्क की सीमा श्रद्धा पर होनी चाहिए।

मानव अनादिकाल से बाहर के देवी देवताओं का पूजक बना रहा है। अपने ही अन्दर विराजमान आत्मदेवता की पूजा करना उसने नहीं सीखा। कस्तूरीमृग अपनी ही सुगन्ध को खोजने के लिए जंगलों में भटकता रहता है और थक कर चूर चूर हो जाता है किन्तु उस सुगन्ध का स्रोत नहीं मिलता। इसी प्रकार भ्रान्त मानव मन भी अपनी आत्मा में रहा हुआ शांति और सुगन्ध को बाहर खोज रहा है जंगलों की खाक छानता है पत्थरों से सिर फोड़ता है मंदिरों में नाक रग

ड़ता है—फिर भी अतृप्त का अतृप्त, निराश का निराश। मुनि श्री उसे सम्बोधित करके 'आत्म-देवता की पूजा का सन्देश दे रहे हैं। सन्देश कितना मार्मिक है इसे जरा 'अमरवाणी' मे पढकर देखिए।

भक्ति का रहस्य दासता या गुलामी नहीं है। सच्ची भक्ति वह है जहाँ भक्त भगवान् के साथ एकता स्थापित कर लेता है। अपना अस्तित्व भूल कर उसी के अस्तित्व मे मिल जाता है।

स्वाध्याय का अर्थ पुस्तको का अध्ययन नहीं है। उसका सच्चा अर्थ है अपने आपको पढना। पुस्तके छोड कर मनुष्य को चाहिए कि स्वय को समझने का प्रयत्न करे। वर्तमान विज्ञानवादियों के लिए वे कहते हैं—"सच्चा ज्ञान प्रकृति के रहस्यों को खोलने मे नहीं है, अपितु अपने रहस्यो के विश्ले-षण मे, उनके जाँच करने मे है।

श्रवण सस्कृति—सभी देश, धर्म और समाज अपनी-अपनी सस्कृति के गीत गाने मे लगे है। किन्तु ढोल बजा कर अपनी आस्तिकता का गीत गाने वाले सभ्य कहे जॉय या असभ्य, उन्हें सस्कृत कहना चाहिए या असस्कृत यह विचार-णीय है। सस्कृति का मूल आधार 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' है। अधिक से अधिक लोगों के सुख एव हित का साधन ही सस्कृति है। यदि यह भावना नहीं है तो ढोल बजाने का कोई अर्थ नहीं है। सस्कृति का अमर आदर्श है—

करने का अपेक्षा दान में अधिक आनन्द का अनुभव करना।

श्रमण संस्कृति किसी का विनाश नहीं चाहती। वह तो दानव को मानव और मानव को देवता बनाना चाहती है। इसी को जैन-साधना में बहिरात्मा अन्तरात्मा और परमात्मा कहा गया है।

जैन परम्परा एवं धर्म का रहस्य मुनि श्री ने 'जैनत्व' और 'श्रमण संस्कृति' में समझाया है। जैन धर्म जातिवाद को नहीं मानता। वहाँ विकास का द्वार प्रत्येक मनुष्य के लिए खुला है। इतना ही नहीं पशु के लिए भी खुला है। इसने सम्प्रदायवाद को कभी महत्व नहीं दिया। वासना कषाय राग-द्वेष आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति जैन है। वह किसी वेष में हो किसी नाम से पुकारा जाता हो कोई क्रियाकांड करता हो, किसी को हाथ जोड़ता हो।

जैन-धर्म की मुख्य प्रेरणा है 'आत्म-देव' होने में। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त बल से सम्पन्न है। वही परमात्मा है। प्रत्येक व्यक्ति को उसी आत्मदेवता की पूजा करनी चाहिए। उसे पहिचान लिया उसके ऊपर जमे हुए मैल को हटाकर असली स्वरूप प्रकट कर लिया तो सब कुछ मिल गया। फिर कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है।

कर्मवाद का अटल नियम बताते हुए आप कहते हैं—

इता है—फिर भी अतृप्त का अतृप्त, निराश का निराश।
मुनि श्री उसे सम्बोधित करके आत्म-देवता की पूजा का सन्देश दे रहे हैं। सन्देश कितना मार्मिक है इसे जरा 'अमरवाणी' में पढ़कर देखिए।

भक्ति का रहस्य दासता या गुलामी नहीं है। सच्ची भक्ति वह है जहाँ भक्त भगवान के साथ एकता स्थापित कर लेता है। अपना अस्तित्व भूल कर उसी के अस्तित्व में मिल जाता है।

स्वाध्याय का अर्थ पुस्तकों का अध्ययन नहीं है। उसका सच्चा अर्थ है अपने आपको पढ़ना। पुस्तकें छोड़ कर मनुष्य को चाहिए कि स्वयं को समझने का प्रयत्न करे। वर्तमान विज्ञानवादियों के लिए वे कहते हैं—"सच्चा ज्ञान प्रकृति के रहस्यों को खोलने में नहीं है, अपितु अपने रहस्यों के विश्लेषण में, उनके जाँच करने में है।

श्रमण संस्कृति—सभी देश, धर्म और समाज अपनी-अपनी संस्कृति के गीत गाने में लगे हैं। किन्तु ढोल बजा कर अपनी आस्तिकता का गीत गाने वाले सभ्य कहे जाँय या असभ्य, उन्हें संस्कृत कहना चाहिए या असंस्कृत यह विचारणीय है। संस्कृति का मूल आधार 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' है। अधिक से अधिक लोगों के सुख एवं हित का साधन ही संस्कृति है। यदि यह भावना नहीं है तो ढोल बजाने का कोई अर्थ नहीं है। संस्कृति का अमर आदर्श है—

ऊपर उठकर तपस्या और त्याग के, मैत्री और करुणा के सुनिर्मल भावना शिखरों का सर्वोच्च स्पर्श कर सके।" महावीर के अनुयायी जैन भी धर्म को सोने चांदी की चकाचौंध में पनपाने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या वे ऊपर की पुकार सुनेंगे?

धर्म का एक-मात्र नारा है—"हम आग बुझाने आये हैं, हम आग लगाना क्या जानें।" जिस धर्म का यह नारा नहीं है वह धर्म धर्म नहीं है।

धर्म का अर्थ समझाते हुए वे मनुष्य से पूछते हैं— मनुष्य! तेरा धर्म तुझे क्या सिखाता है? क्या वह भूले भटकों को राह दिखाना सिखाता है? सबके साथ समानता का भ्रातृभाव का प्रेम का व्यवहार करना सिखाता है? दीन-दुखियों की सेवा-सत्कार में लगना सिखाता है? घृणा और द्वेष की आग को बुझाना सिखाता है? यदि ऐसा है तो तू ऐसे धर्म को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान कर! पूजा कर! अर्चा कर! इसी प्रकार का धर्म विश्व का कल्याण कर सकता है। ऐसे धर्म के प्रचार में यदि तुझे अपना जीवन भी देना पड़े तो दे डाल! हँस हँस कर दे डाल!!

पाप आने से पहले चेतावनी देता है। मन में एक प्रकार का भय तथा लज्जा का अनुभव होता है। यदि हम उस चेतावनी को सुनना सीख लें तो बहुत अंशों तक पाप से

वच सकते है।

सामाजिक सघर्षों का मूल कारण वताते हुए आप कहते है—"आज के दु खों, कष्टों और सघर्षों का मूल कारण यह है कि मनुष्य अपना वोझ खुद न उठाकर दूसरों पर डालना चाहता है।"

समाज-तूत्र का रहस्य आप इस प्रकार प्रकट करते हैं—"समस्त -मानव-जीवन एक ही नाव पर सवार है। यहाँ सवके हित और अहित वरावर है। यदि पार होंगे तो सव पार होंगे और यदि डूवेंगे तो सव डूवेंगे। · यदि मानव जाति व्यक्तिगत स्वार्थों के आगे झुक गई तो वर्वाद हो जाएगी। व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठे विना कहीं भी गुजारा नहीं।" इस समय परिस्थिति यह है कि नाव के एक कोने मे वैठा हुआ व्यक्ति चाहता है कि दूसरे कोने वाला डूव जाय और इसके लिए दूसरे कोने मे छेद करने का प्रयत्न कर रहा है। उसे समझना चाहिये कि छेद कहीं हो, सारी नौका डूवेगी, एक कोना नहीं। समस्त मानव-समाज एक शरीर है। रोग किसी अग में प्रकट हो, कष्ट का अनुभव सारे शरीर को करना होगा।

सघ के जौहरियों से वे कहते है—"जौहरियो! इन पत्थरों को रत्न समझ कर वहुत भटक लिये। पागल हो लिये। अव जरा इन जीते जागते मानव देहधारी हीरों की परख करो। दु ख है कि तुम ककर पत्थर परखते रहे

और इधर न जाने कितने अनमोल रत्न धूल में मिल गये।
'नेता होने की अपेक्षा नेता बनाने में सक्रिय भाग लेना कितना बड़ा गौरव है!'

विज्ञान के वर्तमान विकास की ओर लक्ष्य करके उन्होंने कहा है— 'विज्ञान की तेज छुरी से प्रकृति की छाती को चीर क्या निकाला? विष विष और विष! वह चला था अमृत की तलाश में परन्तु ले आया विष!

भारत की नारी को लक्ष्य करके मुनि श्री का कथन कितना मार्मिक है— 'भारत की नारी तप और त्याग की मोहक मूर्ति है शान्ति और संयम की जीवित प्रतिमा है। वह अन्धकार से घिरे संसार में मानवता की जगमगाती तारिका है। वह मन के कण-कण में बसा हुआ, करुणा सहनशीलता और प्रेम की ठाठें मारता समुद्र लिये घूम रही है। कांटों के बदले फूल बिछा रही है।"

इच्छा होती है 'अमरवाणी' का प्रत्येक सूत्र लेकर उसकी विस्तृत व्याख्या करूं। उसका प्रत्येक वाक्य जीवन-स्पर्शी है हृदय से निकला हुआ है। किन्तु व्याख्या करने में यह भय है कि वह कहीं वहीं तक सीमित होकर न रह जाय। मनुष्य ने आत्मा धर्म जीवन प्रेम आदि अन्तर-तत्वों की व्याख्या का प्रयत्न किया तो क्या परिणाम निकला। उन्हें सम्प्रदाय और पन्थ की दीवारों में बाँट डाला। असीम को ससीम बनाने का प्रयत्न उसे मृत्यु के द्वार पर ले जाना ही है।

वास्तव में देखा जाय तो व्याख्या उन लोगों के लिये होती है जो समझना नहीं चाहते केवल विवाद करना चाहते हैं। समझने की लगन वालों के लिए सूत्र ही पर्याप्त हैं। स्वाति नक्षत्र के समय सीप के मुँह मे गिरी हुई वर्षा की बूद मोती कैसे बन जाती है, इसके लिए केवल बूद को जानना पर्याप्त नहीं है। स्वाति को समझना भी उतना ही आवश्यक है। इसी प्रकार जीवन के सूत्र निर्मल हृदय पर अपने आप भाष्य बन जाते हैं। दूषित हृदय पर भाष्य भी कोई असर नहीं डालता। मैं समझता हूँ, इन सूत्रों को समझने का प्रयत्न साक्षात् चिन्तन, मनन और जीवन मे प्रयोग द्वारा होना चाहिये। टीका-टिप्पणियों द्वारा नहीं। टीका-टिप्पणियों की परम्परा तो इनके भी चारों ओर सम्प्रदायवाद की बाड़ खडी कर देगी और इनका दम घुट जायेगा।

'अमरवाणी' मे कहीं कहीं पुनरावृत्ति प्रतीत होगी। कहीं-कहीं तनिक सा विरोधाभास भी। किन्तु जीवन के विविध पहलुओं को सामने रखकर विचार किया जाय तो उनका रहना आवश्यक प्रतीत होता है।

टाचियों से गढ़-गढ कर बनाये गये ताजमहल मे जितना सौन्दर्य है, हिमालय से अपने आप झरने वाले स्रोतों का सौन्दर्य उससे कहीं बढकर है। एक जड है, दूसरे में जीवन है। कृत्रिम साहित्य और स्वाभाविक उच्छ्वास के रूप मे

प्रकट हुए साहित्य में भी परस्पर यही भेद है। लाक्षणिक पण्डितों ने अपने को माप-दण्ड बना रक्खे हैं उनके अनुसार दूसरे प्रकार का साहित्य निर्दोष नहीं उतरता। किन्तु जीवन का अर्थ ही अपूर्णता है। पूर्णता आदर्शों में रह सकती है जीवन में नहीं। जीवन में पूर्णता आते ही वह समाप्त हो जायेगा। जीवन गति का नाम है और पूर्णता का अर्थ है गति की समाप्ति।

कहा जाता है शिव ने जब ताण्डव नृत्य किया तो उनकी डमरू में से चौदह सूत्र अपने आप प्रकट हुए। वे ही चौदह सूत्र शब्द-शास्त्र के आदि बीज बन गये। महावीर और बुद्ध के लिये भी यही कहा जाता है कि वे मन में सोचकर नहीं बोलते किन्तु उनके मुख से वाणी आप झरती है। वेदों की उत्पत्ति के लिये भी यही कहा गया है—"यस्य निश्वसितं वेदा" अर्थात् वेद उसके निश्वास मात्र हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक परम्परा में समस्त विद्याओं का मूल प्रातिभ प्रस्फोट माना गया है। 'अमरवाणी' में भी उसी की झलक है। कवि-हृदय सन्त के इस उद्गार का साहित्यिक क्षेत्र में अवतरण स्वागत के योग्य है।

दीपमालिका — इन्द्र

१९५४

❀ विषय-सूची ❀

दोहन

त्याग के असंख्य देवता भी मन के लंगड़े को अपने पैरों पर खड़ा नहीं कर सकते।

*   *   *

आग लगाने वालों के भाग्य में आग है और तलवार चलाने वालों के भाग्य में तलवार है। जो दूसरों की राह में काँटे बिछाते हैं, उन्हें फूलों की सेज कैसे मिलेगी?

*   *   *

आज के दुःखों कष्टों और संघर्षों का मूल कारण यह है कि मनुष्य अपना बोझ खुद न उठा कर उसे दूसरों पर डालना चाहता है।

*   *   *

विज्ञान की तेज छुरी से प्रकृति की छाती को चीर कर क्या निकाला? विष विष, और विष! मनुष्य चला था अमृत की तलाश में; पर ले आया विष!

*   *   *

जीवन से अलग हटा हुआ धर्म, अधर्म है और आचार दुराचार। धर्म और आचार का प्रत्येक स्वर जीवन-वीणा के हर सांस के तार के साथ झंकृत रहना चाहिए।

* * *

विचार ही मनुष्यता है और अविचार ही पशुता है।

* * *

क्यों वन-वन में भटक रहे हो? वन में हर बन जाना है, घर में नहीं? यदि घर में नहीं बन सके, तो वन में ही क्या बनना है?

* * *

जीवन क्या है? परस्पर विरोधी तूफानों का संघर्ष। जो इस संघर्ष में अड़ा रहा, बढ़ता रहा, भूला-भटका नहीं, वही शेर है, बाकी सब गीदड़।

* * *

हंस मोती चुगते हैं और काग? तुम निर्णय कर लो कि तुम्हें हंस बनना है या काग?

* * *

अ

म

र

वा

णी

मूल प्रश्न

मूल प्रश्न

मानव के सामने एक मूल प्रश्न है कि वह अपने क्षण-भंगुर जीवन को विश्व के इतिहास में 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' कैसे बनाता है ?

○ ○ ○

सजीव शान्ति

मानव-संसार शान्ति के लिए छटपटा रहा है आज से नहीं, अनादि काल से। परन्तु, सच्ची शान्ति, जीवन की शान्ति कहाँ है, वहाँ खोजने का प्रयत्न नहीं हुआ है। तलवार दिखाकर किसी को चुप कर देना यह भी एक शान्ति है। प्रलोभन के सुनहरी स्वप्न-संसार में अपने को भुलाकर शान्त हो जाना, यह भी एक शान्ति है। परन्तु यह शान्ति मरण की शान्ति है जीवन की शान्ति नहीं। जीवित शान्ति बाहर नहीं, अन्दर में जन्म लेती है। जब मनुष्य के मन की आवश्यकताएँ और वासनाएँ कम होती जाती हैं स्वार्थ के स्थान पर परमार्थ की वृत्ति जागृत हो

जाती है, विश्व-कल्याण में ही अपने कल्याण की पवित्र आकांक्षा विकसित होती है; तब जीवित शान्ति का जन्म होता है। और मानव-समाज स्वर्ग को भूमि पर उतार लाता है।

* * *

मनुष्य ने मनुष्य को नहीं पहचाना

मनुष्य ने आकाश का पता लगाया, भूमि का पता लगाया, सागर की गहराई का पता लगाया। उसने विश्व के सबसे क्षुद्र-पिण्ड परमाणु पर भी हाथ डाला, उसकी शक्ति का पता लगाया और परमाणु बम के आविष्कार ने दुनिया में हा-हा-कार मचा दिया! किं बहुना, आज के मनुष्य ने विज्ञान की आँख लगाकर प्रकृति का कण-कण टटोल डाला, परन्तु दुर्भाग्य से मनुष्य ने पास खड़े अपने ही समानाकृति जाति-बन्धु आदमी को नहीं पहचाना।

* * *

विकास या ह्रास ?

देखिए! वह आसमान में कितनी ऊँचाई पर हवाई जहाज गुर्राता हुआ जा रहा है? हाँ, आज का मनुष्य विज्ञान के पंख लगाकर हवा में उड़ रहा है। ठीक है। हवा में तो उड़ रहा है, पर जमीन पर चलना भूल रहा है।

* * *

मनुष्य का पागलपन

मनुष्य मकान बनाता है, ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी करता है छत बनाता है दरवाजे लगाता है खिड़कियाँ जुड़वाता है और सबको बन्द करवा देता है। फिर सारे घर में पागल की तरह दौड़ता फिरता है। चिल्लाता है हाय! यहाँ सूरज की धूप क्यों नहीं आती ? अन्धकार क्यों है ! सील और सड़ाँध क्यों है ? कोई पूछे, भले आदमी ! सूर्य तो चमक ही रहा है, हवा भी बह रही है! परन्तु, वह आवे तो कैसे आवे ? तूने ही तो सारे दरवाजे बन्द कर रक्खे हैं। द्वार खोल दे, खिड़कियाँ खोल दे ! धूप आएगी प्रकाश और हवा भी आएगी। फिर अन्धकार, सील और सड़ाँध नहीं रहने की। मनुष्य अपने आप ही अपने को बन्धन में डाले हुए है, और बन्धन का ही रोना रो रहा है। कैसी विचित्र विसंगति है !

* ० *

नये मन्दिर, नयी मस्जिद

आज का भगवान मस्जिद में बन्द है, तो आज का ईश्वर मन्दिर में खड़ा खड़ा है। दोनों ही मुक्ति की प्रतीक्षा में हैं और प्रतीक्षा में है—नयी मस्जिद और नये मन्दिर की। मैं समझता हूँ, आज के मोमिनों और भक्तों को अपने दिल की मस्जिद के

और अपने मन के मन्दिर के दरवाजे खोल देने चाहिएँ, ताकि अल्लाह और ईश्वर यहाँ आएँ तथा भटकते हुए मानव-जीवन को कल्याण का प्रशस्त-पथ दिखलाएँ।

*　　　*　　　*

दार्शनिकों से

दुनिया के दार्शनिको! भूखी जनता के मन की पुस्तक के पन्ने उलटो! वहाँ तुम्हें भूख की, ग़रीबी की, अभाव की फ़िलासफ़ी पढ़ने को मिलेगी! ईश्वर और जगत् की पहेलियाँ सुलझाने से पहले जनता के मन की गुत्थियाँ सुलझा लो। कोरी बाल की खाल निकालने से क्या लाभ है? यदि ठीक वस्तु-स्थिति के दर्शन न किये जाँय?

*　　　*　　　*

भूमा तत्व

विश्व-मङ्गल

जब मनुष्य का स्वत्व विस्तृत हो जाता है, जब क्षुद्र ममत्व, विराट् ममत्व का रूप धारण कर लेता है, जब सर्वत्र 'स्व' ही दिखता है, 'पर' कोई नहीं दीखता, जब सबके सुख में ही अपना सुख नजर आता है, जब एक क्षुद्र प्राणी का अहित भी हमारे लिए असह्य हो जाता है, तब समझना चाहिए कि मनुष्य के अन्दर में भगवत्-शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है और वह अन्धकार से प्रकाश में आ रहा है। मृत्यु से अमरत्व में आ रहा है। इस दशा में मनुष्य की चेतना मन, वाणी, कर्म के रूप में जो कुछ सोचेगी, बोलेगी, करेगी, वह अखिल विश्व के लिए मंगलमय होगा।

∘ ∘ ∘

सच्ची विजय

अनन्त काल से संसार के योद्धाओं की तलवारें विजय के पथ पर झन-झना रही हैं। परन्तु विजय कहाँ? वह आज भी

स्वप्न है। विजय किस पर ? शरीर पर या आत्मा पर ? विजय किस से ? तलवार के जोर से या प्रेम के बल पर ? जिस विजय और वीरता की पृष्ठ-भूमि में हृदय न हो, प्रेम न हो, आत्मा न हो, विजित का भी हित न हो, वह विजय नहीं, वीरता नहीं, वर्बरता है। सच्ची विजय वही है, जिसमें रक्त की एक भी बूँद न बहे, जिसमें विजेता के हृदय में अहंकार की और विजित के हृदय में पराजय एव घृणा की भावना न हो, जिसमें विजेता की आकाक्षा विजित की अधिक-से-अधिक सेवा में हो और विजित की आकाक्षा विजेता को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान कर देने में हो। यह विजय, विजेता और विजित दोनों को ऊँचा उठाती है। दोनों को महान् बनाती है।

* * *

मानवता का मौलिक विधान

मनुष्य-मनुष्य के बीच जो जाति, वर्ण, धन तथा प्रतिष्ठा आदि की भेद-भित्तियाँ खडी हुई हैं, इन्हीं के कारण भारत की पवित्र आध्यात्मिक सस्कृति की जड़े खोखली हो गई हैं। जब तक भेद-भावना की इन दीवारों को धक्के-पर-धक्का देकर गिरा न दिया जायगा, तब तक भारतीय सस्कृति के पनपने की आशा करना, दुराशा मात्र है। अतएव भारत के प्रत्येक नर नारी को प्रति दिन प्रात और साय यह गम्भीर विचारणा

करनी चाहिए कि 'मानव और मानव के बीच कोई भेद नहीं, मानवमात्र को जीवन-विकास के पथ में सर्वत्र समान अधिकार है, स्वयं जीना और दूसरों को जीने देना ही मानवता का मौलिक विधान है।"

*   *   *

मैं और मेरा

मैं और मेरा तभी तक कालकूट विष है, जब तक वह अपने-आप में सीमित है, क्षुद्र 'स्व' की परिधि से घिरा है, मन और इन्द्रियों की ही रागिनी सुनता है। परन्तु ज्यों ही विराट् बनता है, 'स्व' के क्षेत्र से 'पर' के क्षेत्र में प्रवेश करता है, अखिल जगत् के प्रति स्नेह और करुणा की वर्षा करता है, तो अमृत बन जाता है। "जगत् का दुःख ही अपना दुःख और जगत् का सुख ही अपना सुख' —यह है मैं और मेरा का विराट् और विश्वमंगल रूप जो क्षणभंगुर संसार में भी मनुष्य को अजर-अमर बना देता है।

*   *   *

मैं और हम

मैं नरक की राह है, तो हम स्वर्ग की राह है। मनुष्य के अन्तर्मन में 'मैं' का अंश जितना कम होगा और 'हम' का

अंश बढ़ेगा, उतना ही वह समाज के नारकीय वातावरण को स्वर्गीय बना सकेगा। जहाँ 'मैं' है, वहाँ अहङ्कार है, दम्भ है, कायरता है, ईर्ष्या है, लोभ है, तृष्णा है और अशान्ति है। जहाँ 'हम' है, वहाँ नम्रता है, सरलता है, प्रेम है, सगठन है, समता है, उदारता है, त्याग और वैराग्य है। 'मैं' क्षुद्र तथा सकुचित है, 'हम' विराट् तथा असीम है।

* * *

बूंद नहीं सागर बनिए

जल की नन्हीं बूद के लिए सब ओर सकट ही सकट है, आपत्ति ही आपत्ति है। उसे मिट्टी का कण सोखने को उभरता है, हवा का झोंका उड़ाने को फिरता है, सूरज की तपती किरण जलाने को उतरती है, पक्षी की प्यासी चोंच पीने को अकुलाती है। किं बहुना, जिधर देखो उधर मौत बरसती है। यदि बूंद को अपना अस्तित्व बचाना है, तो उसे अल्प से भूमा बनना होगा, क्षुद्र से विराट् होना होगा, महासमुद्र बन जाना होगा। समुद्र हो जाने के बाद कोई भय नहीं, आतंक नहीं। आँधी और तूफ़ान आएँ, लाखों पशु और पक्षी आएँ, जेठ का सूरज आग बरसाए और कड़-कड़ाती बिजलियाँ मौत उगलें, परन्तु समुद्र को इन सब उपद्रवों का क्या डर है? वह भूमा बन चुका है, विराट् हो चुका है। उसके अस्तित्व को दुनिया में कहीं भी

उभरता नहीं। मनुष्य भी 'मैं' और 'मेरा' में आबद्ध एक क्षुद्र बूँद है। वह यदि अपने क्षुद्र 'मैं' और 'मेरे' को 'हम' और 'हमारे' का विराट् रूप दे सके, तो वह बूँद से समुद्र बन जाय देश और काल की सीमाओं को तोड़ कर अजर, अमर हो जाय।

* * *

दूसरों के लिए जीना सीखो

सूरज और चाँद का जग को प्रकाश देने में अपना व्यक्तिगत क्या काम है? फूलों और फलों का अपने लिए कुछ क्या उपयोग करते हैं? नदियों का बहने में अपना क्या स्वार्थ है? प्रकृति का सब काम निष्काम-भाव से विश्वोपकार के लिए हो रहा है। क्या विश्व-सृष्टि का स्वामी चैतन्य मनुष्य अपने निजी स्वार्थों को भुला कर जन-हित के लिए कार्य नहीं कर सकता?

* * *

क्षुद्र और विराट् प्रेम

क्षुद्र प्रेम पशुता की ओर ले जाता है और विराट् प्रेम मानवता की ओर। विराट् प्रेम वह प्रेम है, जहाँ घृणा द्वेष कलह और हिंसा के लिए स्थान ही नहीं रहता। सुप्रसिद्ध अहिंसावादी चीनी संत लाओत्से कहता है कि "जो अपने पर

से प्रेम करता है, पर दूसरे के घर से नहीं। यही कारण है कि वह अपने घर के लिए दूसरे के घर में चोरी करता है। हत्यारा अपने शरीर से प्रेम करता है, दूसरे के शरीर से नहीं। इसी कारण वह अपने शरीर के पोषण के लिए दूसरे की हत्या करता है। अधिकारी-गण अपने परिवार से प्रेम करते हैं, दूसरे के परिवार से नहीं। इसी कारण वे अपने परिवार के पोषण के लिए दूसरे परिवारों का शोषण करते हैं। राजा लोग अपने देश से प्रेम करते हैं, दूसरे देशों से नहीं। इसी कारण वे अपने देश-हित के लिए दूसरे देशों पर आक्रमण करते हैं। यदि सभी लोग दूसरों के घर को अपने-जैसा समझें, तो कौन चोरी करेगा? यदि सभी दूसरों के शरीर को अपना-जैसा समझें, तो कौन हत्या करेगा? यदि सभी अपने परिवार-जैसा सभी परिवारों को समझें, तो कौन शोषण करेगा? यदि सभी दूसरे देशों को अपना-जैसा देखने लगें, तो कौन आक्रमण करेगा?"

*   *   *

समता

समतायोग

अन्तरंग और बहिरंग जीवन में समत्व-योग की साधना का ही प्रचलित नाम धर्म है। अन्दर और बाहर में जितनी समता (एकरूपता) उतनी शान्ति और जितनी विषमता, उतनी ही अशान्ति। धर्म और योग का मूल अर्थ ही है, जीवन का सन्तुलन। गीता में कृष्ण इसीलिये तो कहते हैं— 'समत्वं योग उच्यते।'

• • •

सफलता का मूलमन्त्र

क्या आप विरोधी परिस्थितियों में भी अपने मन-मस्तिष्क का उचित सन्तुलन बनाए रख सकते हैं? क्या आप विरोधी तत्त्वों वादों दलों और व्यक्तियों को भी एक-सूत्र में पिरो सकते हैं? क्या आप कभी फूल से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हो सकते हैं? क्या आप कभी अनेकता में एकता और एकता में

अनेकता के भी दर्शन कर सकते हैं ? यदि 'हाँ', तो मैं आज स्पष्ट रूप में आपको लिखे देता हूँ कि आप समय आने पर एक सफल साधक, शासक, नेता, गृहपति हो सकते हैं।

* * *

कर्तव्य का रहस्य

माली, यह क्या कर रहे हो ? तुम जहाँ एक ओर एक पौधे को काट-छाँट रहे हो, तोड़-ताड़ रहे हो, वहाँ दूसरी ओर दूसरे पौधे को लगा रहे हो, सींच रहे हो, यह कैसी भेद-बुद्धि ? यह कैसी विसगति ? तुम्हारे लिए तो सब वृक्ष एक हैं। भला, तुम क्यों किसी एक पर राग और दूसरे पर द्वेष करते हो ?

भैय्या ! यह राग-द्वेष नहीं, समभाव है, भेद-बुद्धि नहीं, सम-बुद्धि है। मुझे समष्टि का हित देखना है, उपवन की सुन्दरता को सुरक्षित रखना है, बाग का उचित पद्धति से विकास करना है। यदि मैं समभावपूर्वक कर्तव्य-बुद्धि से यथोचित अनुग्रह तथा विग्रह न करूँ, तो कहीं का न रहूँ। तुम बाहर में न देख कर अन्दर में देखो। यह राग-द्वेपनहीं, पवित्र कर्तव्य है, जिस में दोनों का ही एक-जैसा अभ्युदय है।

* * *

सुख-दुःख हमारे मेहमान हैं

आपका कोई मेहमान जब आपके द्वार पर आए, तो आप उसका स्वागत करते हैं न? दुःख और सुख दोनों ही आपके मेहमान हैं। जिस प्रकार सुख का स्वागत करते हैं; उसी प्रकार दुःख का सहर्ष स्वागत कीजिए। यह दुःख आपका मेहमान है, आपका बुलाया आया है; फिर भला यह किसी अन्य पड़ोसी के यहाँ जाए तो कैसे जाए? यह नहीं जा सकता कभी नहीं जा सकता। आप रोएँ, तब भी यह आपके यहाँ रहेगा और आप हँसें तब भी। यह आपका मेहमान है। मेहमान के सामने रोनी सूरत बनाने की अपेक्षा प्रसन्न-मूर्ति होना ही गौरव की बात है।

* * *

सुख में समभाव

मैं देखता हूँ प्रायः धर्मोपदेशक या अन्य लोग दुःख को समभाव से सहन करने की शिक्षा देते हैं। परन्तु क्या अकेले दुःख में ही समभाव की आवश्यकता है, सुख में नहीं? मुझे तो ऐसा लगता है कि दुःख की अपेक्षा सुख में ही अधिक समभाव की आवश्यकता है। प्रायः लोगों को दुःख की अपेक्षा सुख ही कम हजम होता है। इतिहास में हजारों आदमी ऐसे मिल सकते हैं, जो मात्र सुख को समभाव से सहन न कर सकने

के कारण पागल हो गए। रावण, दुर्योधन, कंस और जरासन्ध आदि इसी श्रेणी के पागल तो थे!

* * *

लाठी या लाठी वाला?

संसार में दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ हैं—एक श्वा-मनोवृत्ति और दूसरी सिंह-मनोवृत्ति। श्वा का अर्थ कुत्ता है। कुत्ते को जब कोई लाठी मारता है, तब वह उछलकर लाठी को मुँह में पकड़ता है। कुत्ता समझता है, "लाठी ही मुझे मार रही है।" परन्तु, क्या लाठी को पकड़ने से समस्या हल हो जाती है? जब तक लाठी के पीछे का हाथ मौजूद है, तब तक लाठी की हरकत बन्द नहीं हो सकती! दूसरी सिंह-मनोवृत्ति है। सिंह को जब कोई लाठी या ढेले से मारता है, तो वह लाठी और ढेले पर नहीं झपटता। वह झपटता है, लाठी मारने वाले पर! उसकी दृष्टि में लाठी कुछ नहीं है। जो कुछ है, लाठी वाला है!

इसी प्रकार अज्ञानी आत्मा दुःख देने वाले पर क्रोध करता है, उसे ही उपद्रव का मूल कारण समझता है। परन्तु, ज्ञानी आत्मा दुःख या संकट देने वाले पर आवेश नहीं करता। उसका लक्ष्य, उसमें रहे हुए कषाय-भाव की ओर रहता है। वह समझता है कि "यह बेचारा तो निमित्त कारण है।

कषाय-भाव से प्रेरित है, अतः पापाचरण के लिए विवश है। इस पर क्या रोष करूँ ? इसके अन्दर रहे हुए विकारों को मैं यदि दूर कर सकूँ, तो फिर यह अपने आप अच्छा हो जाएगा भला हो जाएगा!" अस्तु, सिंह-मनोवृत्ति का साधक उपद्रवी के विकारों पर मस्तता है, अहिंसा और प्रेम के अस्त्र से उन्हें पराजित करता है।

* * *

भागो नहीं, दृष्टि बदलो

गृहस्थो! संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। भाग कर आखिर जाओगे भी कहाँ? जहाँ जाओगे, वहाँ संसार तो रहेगा ही। अतः भागो नहीं, दृष्टि बदलो! पर द्रव्यों में से पदार्थों और परिजनों में से ममत्वरूपी जहर निकाल दो फिर भले ही उसका उपयोग करो। वह कष्ट नहीं देगा अपितु सब देगा अमरत्व देगा। आप जानते हैं, सोमल जहर को मार डालने से वह संजीवन बन जाता है—अमृत बन जाता है।

* * *

वैराग्य की ऊँचाई

जब आप किसी पहाड़ की ऊँची चोटी पर चढ़े होते हैं, तब नीचे के सब पदार्थ क्षुद्र नजर आने लगते हैं। ऊँचे-ऊँचे वृक्ष जमीन से लगे हुए से, और गाय, भैंस, मनुष्य सब छोटे-छोटे बौने से। इसी प्रकार जब साधक वैराग्य की, आत्म-भाव की ऊँचाइयों पर चढा होता है, तब उसे ससार के समस्त भोग-विलास, धन, वैभव, मान-प्रतिष्ठा तुच्छ एव क्षुद्र मालूम होने लगते हैं। ससार का महत्त्व ससार की ओर नीचे झुके रहने तक है, दूर ऊँचे चढ़ जाने पर नहीं।

*　　*　　*

बाहर-भीतर एक समान

अरे मनुष्य! तू नुमाइश क्यों करता है? तू जैसा है, वैसा बन। अन्दर और बाहर को एक कर देने में ही मनुष्य की सच्ची मनुष्यता है। यदि मानव अपने को लोगों में वैसा ही जाहिर करे, जैसा कि वह वास्तव में है, तो उसका बेड़ा पार हो जाय!

*　　*　　*

बनो।

कर्मवाद का आदर्श

एक सज्जन ने पूछा "कर्मवाद का व्यावहारिक जीवन-क्षेत्र में क्या आदर्श है ? मैंने कहा— एक मनुष्य कहीं जा रहा है। दूसरा आदमी आता है और उसके पत्थर मार देता है। बताइए तब क्या होता है ?" उत्तर मिला—"मन में भयंकर विद्रोह होता है, द्वन्द्व होता है चारों तरफ घृणा द्वेष क्रोध एवं नफरत बरस पड़ते है। आखिर उसने मुझे मारा ही क्यों !" मैंने कहा— 'कल्पना करो किसी ने मारा नहीं व्यक्ति अपने-आप ही गलती से ठोकर खा जाता है और चोट लगने से छिन्न-भिन्न होने लगता है। बताइए, तब क्या होता है ?" उत्तर मिला—"तब क्या होता है ? यही होता है कि अपनी गलती से ठोकर लगी है अतः दूसरों को क्या दोष दें ! किससे द्वेष घृणा नफरत करें ? चोट लगी है, बस उसे समभाव से सहन कर लेना है। आखिर अपनी भूल ने ही तो मारा है ?" मैंने कहा— कर्मवाद यही सिखाता है कि अपना किया कर्म है। शान्ति से भोगो ! व्यर्थ ही दूसरों को दोष देने और घृणा करने से क्या लाभ ? अपितु, दोषारोपण और घृणा हो तो आगे के लिए और अधिक बन्धन में फंसेगी ! दुःख का मूल कारण अपनी आत्मा में ही है, अपने दोष में ही है। दूसरे तो मात्र निमित्त कारण होते हैं ! कर्मवाद, विचारक के लिए समभाव का आलम्बन है !"

* * *

सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

जीवन में स्वर्ग उतारो

मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में जाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि इस जीवन में ही आचरण के रंगमंच पर स्वर्ग को उतारना। यदि अगले जीवन में अपने मनोऽनुकूल कुछ परिवर्तन चाहते हो, तो पहले यहाँ इस जीवन में परिवर्तन करो।

* * *

संघर्ष और सहयोग

मानव-जाति का उत्थान संघर्ष में नहीं, सहयोग में है। स्पर्द्धा में नहीं, सहकारिता में है। वैमनस्य में नहीं, प्रेम में है। हमारा सुन्दर भविष्य आपसी भाईचारे पर निर्भर है। इस विशाल पृथ्वी पर एक कोने से दूसरे कोने तक बसे हुए मानव-समूह में जितनी अधिक भ्रातृ-भावना विकसित होगी, उतनी ही शान्ति और कल्याण की अभिवृद्धि होगी।

* * *

सत्य

सत्य एक साधना है, कठोर साधना। उसका मार्ग तलवार की पैनी धार पर होकर गुजरता है। उस पर चलते समय न इधर झुकना है और न उधर, और न कहीं बीच में रुक कर खड़ा होना है। ठीक सत्य के सामने एक-एक कदम बढ़ाना है। सत्य के राही का एक ही नारा है—"चरैवेति, चरैवेति।' 'चले चलो, चले चलो!'

* * *

सत्य और प्रिय

सच्ची बात और है तथा सुनने वाली और। बात वह कहनी चाहिए, जो असर तो करे; पर सुनने वाले के हृदय को छेद न डाले।

* * *

व्यक्ति और सत्य

इस व्यक्ति या उस व्यक्ति की ओर न झुक कर सत्य की शरण स्वीकार करो। व्यक्ति जन्मता है, तो मरता भी है; परन्तु सत्य अजन्मा है, अजर और अमर है।

* * *

सत्यं, शिवम्

जो सत्य है, वह बोलना चाहिए, यह ठीक नहीं है। अपितु, जो सत्य जनता का कल्याण करने वाला हो, वह बोलना चाहिए, यह ठीक है।

* * *

अहिंसा

अहिंसा वह अद्भुत शक्ति है, जिसके समक्ष भय, आशङ्का, अशान्ति, कलह, घृणा और पशुत्व आदि भाव पल-भर के लिए भी नहीं ठहर सकते।

अहिंसा, मानवता की आधार-शिला है, मानवता का उज्ज्वल प्रतीक है। परिवार में, समाज में, राष्ट्र में यदि शान्ति का दर्शन करना हो, तो अहिंसा का मूल-मत्र जपना ही होगा। अहिंसा साधना-शरीर का हृदय-भाग है। वह यदि सक्रिय है, तो साधना जीवित है, अन्यथा मृत है।

किसी प्राणी को मारना अपने को मारना है। और दूसरे प्राणी को बचाना अपने को बचाना है। जब तक यह गम्भीर सत्य अन्त करण की गहराई में न बैठे, तब तक अहिंसा कैसी ?

* * *

अहिंसा का सफल प्रयोग

अहिंसा और प्रेम की शक्ति दुर्बल तथा असफल तभी तक मालूम देती है, जब तक वह अविकसित है। वह अग्नि पर अवश्य विजय प्राप्त करता है, परन्तु तभी जब कि उसका खुल कर पूरी शक्ति से प्रयोग किया जाय! वन में दावानल लगी हो, अगर कोई चुल्लू भर पानी उस पर डाले, तो क्या होगा? अगर दावानल पर वर्षा की झड़ी लगे, तो क्या अग्नि की एक चिनगारी भी शेष रहेगी? आज के लोग अहिंसा का चुल्लू-भर, चुल्लू-भर क्या बूँद जितना प्रयोग करते हैं और चाहते हैं उससे घृणा तथा अहिंसा का दावानल बुझना। वह बुझे तो कैसे बुझे। प्रेम और अहिंसा की झड़ी लगाइए फिर देखिए, दावानल बुझता है या नहीं?

* * *

पाशविक शक्ति का प्रतिकार

आपको एक आदमी ने कुत्ते की तरह काट खाया और बदले में आपने भी उसे कुत्ते की तरह काट खाया। अब मैं इस विचार में हूँ कि उसमें और आप में अन्तर ही क्या रहा? आप दोनों ही कुत्ते की भूमिका से आगे नहीं बढ़ सके। क्या 'पाशविक शक्ति का मुकाबला पाशविकता से ही किया जा सकता

है ? मानवी शक्ति से नहीं ? पाशविक शक्ति के कुचक्र में फँ
दुनिया के उद्धार के लिए मानवी शक्ति को जागृत कीजिए
आखिर, इसके बिना गुजारा नहीं है। आग को बुझाने के लि
आग काम नहीं आएगी, पानी ही काम आएगा।

* * *

प्रेम की शक्ति

तलवार मनुष्य के शरीर को झुका सकती है, मन को नहीं
मन को झुकाना हो, वश में करना हो, तो प्रेम के अस्त्र का प्रयोग
करो। प्रेम का राज्य हजारों-लाखों वर्षों बाद भी चलता रहत
है, जब कि तलवार मनुष्य के जीवन-काल में ही टूट कर खण्ड
खण्ड हो जाती है।

अहिंसा के पुजारी का कोई शत्रु नहीं है। जो दूसरों के लिए
हृदय में प्यार भर कर चला है, उसे सर्वत्र प्यार ही मिलेगा,
आदर ही मिलेगा। प्यार को प्यार मिलता है और तिरस्कार
को तिरस्कार !

* * *

खरी–खरी

"जो तलवार से ऊँचे होंगे, वे तलवार से ही नष्ट हो जाएँगे
प्रभु ईसा का यह अमर वाक्य क्या भुला देने के योग्य है

क्या इस वाक्य में मानव-जाति की युद्ध-परम्पराओं का विराट इतिहास अंकित नहीं कर दिया गया है ? भूमण्डल पर शान्ति, शक्ति से नहीं स्नेह से मिल सकती है। जो स्वयं जिन्दा रहेंगे और दूसरों को जिन्दा रहने देंगे, उनके हाथ में आई शक्ति ही विश्व के लिए वरदान होगी। जिस शक्ति के पीछे स्नेह नहीं है, जन कल्याण नहीं है, वह शक्ति रावण की होती है, राम की नहीं।

* * *

प्रेम की पगडंडी

जहाँ विषय-वासना है, वहाँ प्रेम कैसा ? प्रेम की पगडंडी तो शुद्ध आध्यात्मिक भाव के ऊँचे शिखरों पर से होकर जाती है। प्रेम शरीर की सुन्दरता और धन की सम्पन्नता नहीं देखता। वह देखता है, एकमात्र आत्मा की सुन्दरता और गुणों की सम्पन्नता।

* *

प्रेम और मोह

प्रेम और मोह दोनों दो अलग-अलग चीजें हैं। दोनों को एक समझना भारी भूल है। प्रेम आत्मा को विकसित करता है, विराट बनाता है और मोह आत्मा को संकुचित

करता है, क्षुद्र बनाता है। प्रेम निष्काम-भावना की शुद्ध स्नेहानुभूति है, तो मोह स्वार्थ की दूषित अनुरक्ति!

* * *

प्रेम

प्रेम क्या है? प्रेम हृदय की वह तरंग है, जो शत्रु-व्यष्टि से विराट-समष्टि की ओर दौड़ती है। और अखिल विश्व को अपनी सहज ममता के द्वारा आत्मसात् कर लेती है।

* * *

राम की उदारता

भारतीय इतिहास कहता है कि जब विभीषण सर्व-प्रथम राम से मिले, तो राम ने उसे 'लंकेश' कह कर स्वागत किया। पास बैठा हुआ एक वानर मुस्कराया और बोला "यदि रावण सीता लौटा दे, तो उसका क्या राज्य होगा?" राम ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"कोई आपत्ति नहीं। तब मैं भाई भरत को रावण के लिए अयोध्या का सिंहासन छोड़ने के लिए कहूँगा।"

यह है भारतवर्ष का राम! क्या हम अब भी कभी इतनी ऊँचाई पर चढ़ने का प्रयत्न करेंगे? ऊँचे जीवन समेटने से नहीं, प्रत्युत उदारतापूर्वक बाँटने से बनते हैं।

* * *

दिव्य सन्देश

सब से अच्छी बात तो यह है कि तुम जहाँ रहते हो, वहाँ अपने आस-पास, सेवा का एक छोटा मोटा केन्द्र बनाओ और उपलब्ध साधनों के साथ जन-सेवा में जुट जाओ।

दुर्भाग्य से यदि सेवा की बुद्धि न हो अथवा सेवा कर सकने की स्थिति न हो, तो किसी की अप-सेवा तो न करो। किसी को कष्ट तो न पहुँचाओ। यदि तुम किसी को हँसा नहीं सकते तो किसी को रुलाओ तो मत! किसी का आशीर्वाद नहीं दे सकते, तो किसी को शाप तो न दो गाली तो न दो!

° ° °

करता है, क्षुद्र बनाता है। प्रेम निष्काम-भावना की शुद्ध स्नेहानुभूति है, तो मोह स्वार्थ की दूषित अनुरक्ति!

* * *

प्रेम

प्रेम क्या है? प्रेम हृदय की वह तरंग है, जो शत्रु-व्यष्टि से विराट-समष्टि की ओर दौड़ती है। और अखिल विश्व को अपनी सहज ममता के द्वारा आत्मसात् कर लेती है।

* * *

राम की उदारता

भारतीय इतिहास कहता है कि जब विभीषण सर्व-प्रथम राम से मिले, तो राम ने उसे 'लंकेश' कह कर स्वागत किया। पास बैठा हुआ एक वानर मुस्कराया और बोला "यदि रावण सीता लौटा दे, तो उसका क्या राज्य होगा?" राम ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"कोई आपत्ति नहीं। तब मैं भाई भरत को रावण के लिए अयोध्या का सिंहासन छोड़ने के लिए कहूँगा।"

यह है भारतवर्ष का राम! क्या हम अब भी कभी इतनी ऊँचाई पर चढ़ने का प्रयत्न करेंगे? ऊँचे जीवन समेटने से नहीं, प्रत्युत उदारतापूर्वक बाँटने से बनते हैं।

* * *

दिव्य सन्देश

सब से अच्छी बात तो यह है कि तुम जहाँ रहते हो, वहाँ अपने आस-पास, सेवा का एक छोटा-मोटा केन्द्र बनाओ और यथाशक्य साधनों के साथ जन-सेवा में जुट जाओ।

दुर्भाग्य से यदि सेवा की बुद्धि न हो अथवा, सेवा कर सकने की स्थिति न हो, तो किसी की अप-सेवा तो न करो। किसी को कष्ट तो न पहुँचाओ। यदि तुम किसी को हँसा नहीं सकते तो किसी को रुलाओ तो मत। किसी को आशीर्वाद नहीं दे सकते तो किसी को शाप तो न दो, गाली तो न दो।

° ° °

करता है, क्षुद्र बनाता है। प्रेम निष्काम-भावना की शुद्ध स्नेहानुभूति है, तो मोह स्वार्थ की दूषित अनुरक्ति!

* * *

प्रेम

प्रेम क्या है? प्रेम हृदय की वह तरंग है, जो शत्रु-व्यष्टि से विराट-समष्टि की ओर दौड़ती है। और अखिल विश्व को अपनी सहज ममता के द्वारा आत्मसात् कर लेती है।

* * *

राम की उदारता

भारतीय इतिहास कहता है कि जब विभीषण सर्व-प्रथम राम से मिले, तो राम ने उसे 'लंकेश' कह कर स्वागत किया। पास बैठा हुआ एक वानर मुस्कराया और बोला "यदि रावण सीता लौटा दे, तो उसका क्या राज्य होगा?" राम ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"कोई आपत्ति नहीं। तब मैं भाई भरत को रावण के लिए अयोध्या का सिंहासन छोड़ने के लिए कहूँगा।"

यह है भारतवर्ष का राम! क्या हम अब भी कभी इतनी ऊँचाई पर चढ़ने का प्रयत्न करेंगे? ऊँचे जीवन समेटने से नहीं, प्रत्युत उदारतापूर्वक बाँटने से बनते हैं।

* * *

दिव्य सन्देश

सब से अच्छी बात तो यह है कि तुम जहाँ रहते हो, वहाँ अपने आस-पास, सेवा का एक छोटा-मात्र केन्द्र बनाओ और यथाशक्य साधनों के साथ जन-सेवा में जुट जाओ।

तुममें यदि सेवा की बुद्धि न हो अथवा सेवा कर सकने की स्थिति न हो, तो किसी की अप-सेवा तो न करो, किसी को कष्ट तो न पहुँचाओ। यदि तुम किसी को हँसा नहीं सकते, तो किसी को रुलाओ तो मत! किसी को आशीर्वाद नहीं दे सकते, तो किसी को शाप तो न दो, गाली तो न दो!

* * *

जीवन

१—जीवन की कला

२—मानव

३—महामानव

४—यौवन

जीवन की कला

जीवन का स्वरूप

जीवन क्या है? परस्पर विरोधी तूफानों का संघर्ष! जो इस संघर्ष में खड़ा रहा चलता रहा, झुका भटका नहीं, वही शेर है, बाकी सब गीदड़!

* * *

चलना ही जीवन है

चले चलो, चले चलो! देखो, कहीं खड़े न हो जाना। चलना जीवन है, और खड़े होना मृत्यु। व्यक्ति हो या समाज, जो खड़ा हो गया वह समाप्त हो गया और जो चलता रहा वह प्रतिदिन नया जीवन प्राप्त करता रहा।

झरने बहते रहे, बीच के साथियों से मिल-मिल कर नदी बनते रहे और सारे मार्ग में जन-कल्याण करते हुए समुद्र में पहुँच कर समुद्र बन गए, परन्तु गाँव का पोखर बिना प्रवाह के पड़ा-पड़ा सड़ गया, गन्दा हो गया, मच्छरों की जन्म-भूमि

बन कर वातावरण को दूषित करता हुआ, जन-जन की घृणा का पात्र बन कर समाप्त हो गया।

*　　*　　*

जीवन-पथ

यह भी कोई जीवन है कि मरियल कुत्ते की तरह हर दम दुम दबाए, दुबके-से, डरे-से, फिरते रहें। गलत बात के आगे सिर झुकाना, दुर्बलता का चिन्ह है। भयभीत मनुष्य जीवन की लड़ाई नहीं लड़ सकता। वह दब्बू हर हालत में दूसरों को ख़ुश करने में लगा रहेगा और हर किसी के आगे आत्म-समर्पण करता-करता एक दिन चल बसेगा।

और यह भी क्या जीवन कि भूखे भेड़िये की तरह हर दम गुर्राते रहें। न मिलने में रस और न बिछुड़ने में। जीवन के चारों ओर आग ही आग बरसती रहे, पानी की बूँद भी न मिले। पत्थर की तरह कठोर होना ठीक नहीं है। जीवन में प्रेम की लचक भी होनी चाहिए। कठोरता और मृदुता ही जीवन-पथ है।

*　　*　　*

जीवन का लक्ष्य

मानव-जीवन केवल संग्रह करने के लिए नहीं है, अपितु संग्रह के साथ उसका उचित रूप से वितरण करने के लिए है।

* * *

सफलता का मूल-मन्त्र

आपका काम नीरस, असफल अभद्र तथा अधूरा क्यों रहता है क्या कभी इस प्रश्न पर विचार किया है? नहीं किया हो तो अब कर लीजिए। आपका हर काम इसलिए अभद्र तथा अधूरा रहता है कि आप उसमें विश्वास, प्रेम और बुद्धिमत्ता का यथोचित मात्रा में उपयोग नहीं करते। ये तीन गुण, वे गुण हैं जो समस्त सद्गुणों वैभवों, सफलताओं और ऐश्वर्यों के एक-मात्र मूल कारण हैं।

जो लोग कर्म-क्षेत्र में अधूरे मन से उतरते हैं, उसमें रस नहीं लेते उनमें प्रतिभा का प्रकाश नहीं फैलता, वे किसी भी उत्तरदायित्व-पूर्ण पद को पाने की क्षमता नहीं रखते। मानव संसार में एक पुरानी कहावत है कि 'जो रोता आता है, वह अवश्य मरे की खबर लाता है'। हाँ, तो आप कर्तव्य के मोर्चे पर रोते हुए न जाइए, हर्गिज न जाइए! हँसते आओ, हँसाते

जाओ, हँसते आओ, हँसाते आओ—सफलता का यही मूल-मन्त्र है, कृपया इसे भूलिए नहीं।

* * *

वीर और कायर

वीर और कायर में क्या अन्तर है। सिर्फ एक क़दम का। वीर का क़दम जहाँ आगे की ओर बढ़ने में होता है, कायर का क़दम पीछे की ओर भागने में होता है।

* * *

सिद्धि और प्रसिद्धि

मानव की सबसे बड़ी भूल यह है कि वह जितना प्रयत्न प्रसिद्धि पाने के लिए करता है, उतना सिद्धि पाने के लिए नहीं करता। बिना सिद्धि (सफलता) के प्रसिद्धि (ख्याति) प्रथम तो मिलती नहीं है। यदि कभी किसी कुचक्र से मिल भी जाती है, तो वह अधिक ठहर नहीं सकती। इतना कच्चा रंग है उसका। अतएव जीवन की साधना में साधक को पहले सिद्ध होना चाहिये। प्रसिद्ध होने की क्या चिन्ता? सिद्ध हुए, तो प्रसिद्ध होना ही है।

* * *

स्वयं-बुद्ध या बुद्ध-बोधित

अपनी आँखों में प्रकाश हो तो आत्मप्रकाश के साथ अपने आप तीर की तरह सीधे बढ़े चलो। क्यों किसी की अँगुली पकड़ने का इन्तज़ार हो। यदि अपनी आँख में रोशनी न हो तो किसी प्रकाशवान आँखों वाले को गुरु करो और उसके कन्धे पर हाथ रखकर पीछे-पीछे हो लो। हाँ खड़े मत रहो चलो अवश्य। यात्रा चलने से ही पूरी होगी। गुरु बन कर चलो या शिष्य यह तुम्हारी अपनी योग्यता पर है।

•   •   •

सूली और सिंहासन

जैन-संस्कृति में सूली से सिंहासन होने की अनेक कहानियाँ आती हैं। यह एक अलंकार है, जीवन का अलंकार। संसार का धन, वैभव स्वजन, परिजन मान-पूजा आदि जो कुछ भी मिला है—सब सूली है, जीवन के ममत्व को बींध कर रख देने वाली। इस सूली पर चढ़कर वही मुक्ति पाएगा जो सूली से सिंहासन बनाने की कला जानता है। जीवन की सूली पर सुदर्शन की तरह चढ़ो उस सूली से सिंहासन बना लो। ममता की नुकीली नोक को तोड़ डालो। अपनी समस्त उपलब्ध शक्तियों को जग-हित के पथ पर निछावर कर दो। जहाँ 'मैं' और 'मेरा' है

वहाँ जीवन सूली है और जहाँ 'हम' और 'हमारा' है, वहा वही जीवन सिंहासन है।

* ✿ *

जीवन का रहस्य : गिर कर उछलना

वह जीवन ही क्या, जिसे चोट खाकर दूना उत्साह और दूना वेग न मिले ! निर्झर पत्थर से टकरा कर दूना वेग प्राप्त करता है। और, वह देखिए रबड की गेद भूमि से टकरा कर कितना ऊपर उछलती है ' प्रत्येक विघ्न-बाधा एव चोट मनुष्य को ऊँचा उठाने के लिए है। यह जीवन का रहस्य क्या कभी मनुष्य की समझ में आएगा ?

* * *

कुतुब मीनार से

जब मैं दिल्ली के पास कुतुब मीनार की आखिरी मंजिल पर चढ़ा, तो नीचे के ताँगे, मोटर और मनुष्यों के विभिन्न स्वर, जो नीचे आपस में टकराते-से मालूम होते थे, सब मिल कर एक अखण्ड मधुर गान से प्रतीत होने लगे ! तब मुझे एक दार्शनिक विचारणा ध्यान में आई कि साधक, अपने मन को भव-प्रपच से जितना भी ऊँचा उठाएगा, जितना भी अलग करेगा, उतना ही

जीवन के परस्पर विरोधी मानसिक द्वन्द्व कम होंगे और अखण्ड एकाग्रता का एवं एक-रसता का आनन्द आएगा। यदि नीचे उतरते हैं तो भेद-प्रतीति होती है और ऊँचे चढ़ते हैं तो अभेदानुभूति होती है।

• • •

दुःख का वरदान

दुःख की चोट से क्यों घबराते हो? उसे पड़ने दो और जोर से पड़ने दो। नगाड़ा अपने आप नहीं बजता। वह बजता है डंडे की चोट पड़ने पर। ज्योंही डंडे की चोट पड़ी कि नगाड़े की गम्भीर ध्वनि दूर-दूर तक जनता के कानों को आकृष्ट करने लगती है। दुःख की चोटों से चोट खाओ भी, यदि जीवन का नगाड़ा मजबूत है, तो वह भी गम्भीर ध्वनि से दिग्दिगन्तर गुंजाने के लिए है।

• • •

खरा सोना बनिए

आग से घास-फूस डरता है। ज्योंही आग का स्पर्श हुआ कि भस्म! परन्तु खरे सोने को क्या डर है? आग में पड़कर सोने की चमक जाती नहीं; वह और भी चमकती-दमकती है।

मनुष्य ! तू सोना बन, घास फूँस नहीं। फिर दुःख की आग चाहे कैसी ही हो, वह तुझे चमकाएगी, जलाएगी नहीं।

* * *

खतरों से खेलना सीखिए

समाज में प्रतिष्ठा या सम्मान उन लोगों के लिए है, जो बढ़कर आगे आते हैं, सेवा में जुटते हैं, संघर्ष में पड़कर भी मस्तक पर बल नहीं लाते। जो लोग पीछे पड़े हैं, कोने में दुबके हैं, उनके लिए संसार के सत्कार का उपहार कहीं भी नहीं है। हाथी रण-क्षेत्र में रहते हैं और मच्छर अंधेरी कोठरी के गन्दे कोने में !

* * *

प्रतिज्ञा पर अड़े रहो

आपने प्रतिज्ञा कर ली, बुराई का परित्याग कर दिया। परन्तु फिर उसी बुराई को अपनाने लगे, स्वीकृत प्रतिज्ञा को भंग करने लगे। यह तो ऐसा हुआ कि पहले थूका और फिर चाट लिया। बात कड़वी है। परन्तु, यह कटु औषध, हलाहल जहर पीने से बचाती है। सती राजीमती ने रथनेमि को इसी प्रकार ललकारा था—"क्या तुम वमन किए हुए भोजन को फिर खाना चाहते हो ! यह तो कुत्तों का काम है, मनुष्यों का नहीं। इस

प्रकार के कुत्सित जीवन से मृत्यु कहीं अच्छी* ।

वस्तुतः शक्तिहीन भोगासक्त जीवन मुरदे के बराबर है।

* * *

पोषणपूर्वक शोषण

जब तक मनुष्य संसार में है तब तक व्यापार के द्वारा या और किसी साधन के द्वारा रोटी-कपड़े का संग्रह करना ही पड़ता है, जीवन-व्यवहार के साधनों को जुटाना पड़ता है।

---

* टिप्पणी—राजीमती की कथा जैन-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ के साथ इसका विवाह निश्चित हुआ था। बरात के स्वागत में मारे जाने वाले पशु-पक्षियों के करुण क्रन्दन को सुनकर नेमिनाथ विवाह किये बिना ही वापिस लौट गए और घर-बार छोड़ कर मुनि हो गए। राजीमती ने भी दूसरे व्यक्ति के साथ विवाह करने की अपेक्षा अपने मनोनीत पति के पथ पर चलना उचित समझा। वह भी परिव्राजिका हो गई। एक बार वह नगर से अपने खास स्थान पर जा रही थी। मार्ग में वर्षा होने लगी और वह भीग गई। पास ही पर्वत की एक गुफा थी। वह उसमें घुसकर कपड़े सुखाने लगी। नेमिनाथ का छोटा भाई रथनेमि भी उसी गुफा में ध्यानस्थ खड़ा था। बिजली की चमक के कारण उसकी दृष्टि राजीमती के नग्न शरीर पर पड़ी। वह विचलित हो गया और उसने राजीमती के सामने सांसारिक सुख भोगने का प्रस्ताव रक्खा। उस समय राजीमती ने परिव्राजिका होने के नाते दृढ़ हो उसको समझा दी और उसे फिर संयम दृढ़ कर दिया।

मनुष्य ! तू सोना बन, घास फूँस नहीं। फिर दुःख की आग चाहे कैसी ही हो, वह तुझे चमकाएगी, जलाएगी नहीं।

* * *

खतरों से खेलना सीखिए

समाज में प्रतिष्ठा या सम्मान उन लोगों के लिए है, जो बढ़कर आगे आते हैं, सेवा में जुटते हैं, संघर्ष में पड़कर भी मस्तक पर बल नहीं लाते। जो लोग पीछे पड़े हैं, कोने में दुबके हैं, उनके लिए संसार के सत्कार का उपहार कहीं भी नहीं है। हाथी रण-क्षेत्र में रहते हैं और मच्छर अंधेरी कोठरी के गन्दे कोने में!

* * *

प्रतिज्ञा पर अडे रहो

आपने प्रतिज्ञा कर ली, बुराई का परित्याग कर दिया। परन्तु फिर उसी बुराई को अपनाने लगे, स्वीकृत प्रतिज्ञा को भंग करने लगे। यह तो ऐसा हुआ कि पहले थूका और फिर चाट लिया। बात कड़वी है। परन्तु, यह कटु औषध, हलाहल जहर पीने से बचाती है। सती राजीमती ने रथनेमि को इसी प्रकार ललकारा था—"क्या तुम वमन किए हुए भोजन को फिर खाना चाहते हो! यह तो कुत्तों का काम है, मनुष्यों का नहीं। इस

आसपास के जन समाज में से कुछ-न-कुछ शोषण भी करना पड़ता है। परन्तु, वह शोषण पोषणपूर्वक होना चाहिए। गाय को दुहने जैसा होना चाहिए। जिस प्रकार गाय को दुहने से पहले उसे खिलाते-पिलाते हैं, सेवा-शुश्रूषा करते हैं। अपना खिलाया-पिलाया जब दूध का रूप ले लेता है, तब उचित मात्रा में दुह लिया जाता है। उसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि वह पहले आसपास के समाज का पोषण करे, सेवा-शुश्रूषा करे और उसके बाद उचित मात्रा में अपने पोषण के लिए उसमें से रोटी-कपड़े का संग्रह करे। पोषणपूर्वक शोषण गाय का दुहना है, तो पोषणहीन शोषण खून निचोड़ना है।

* * *

कठोरता

मनुष्य को कठोर होना हो, तो उसे नारियल के समान कठोर होना चाहिए। नारियल बाहर से रूखा, नीरस और कठोर होता है, परन्तु अन्दर से कोमल, मधुर और जीवन-प्रद रस से सराबोर। पत्थर के टुकड़े की तरह अन्दर और बाहर सर्वत्र कठोर जीवन अपनाने से क्या लाभ ?

* * *

जीवन-संगीत

महापुरुष की परिभाषा है कि वह वज्र-सा कठोर हो और नवनीत-सा मृदु। कठोरता और मृदुता का मधुर मिलन ही महापुरुषत्व का जीवन-संगीत है।

* * *

जीवन और मृत्यु

कुछ दिनों साँस लेने का नाम जीवन नहीं है और इस धक-धक का रुक जाना मृत्यु नहीं है। जीवन का अर्थ है—निरन्तर अपने अस्तित्व का अनुभव कराना। ईंट-पत्थरों के ढेर खड़े करके अथवा दूसरों का शोषण करके नहीं, किन्तु दूसरों के लिए भावों का बलिदान करके। प्रत्येक साँस दूसरे के लिए लेना सीखिए। जिस दिन आपने अपने लिए श्वास लेने प्रारम्भ किए, वही मृत्यु का दिन है।

* * *

मानव

चौराहा

मानव विश्व के चौराहे पर खड़ा है। वह जिधर चाहे, जा सकता है। जो कुछ चाहे, बन सकता है। जो मनुष्य बन कर रहेगा, वह स्वर्ग और मोक्ष की ओर बढेगा। और जो मनुष्यत्व से गिर जायगा, वह नरक या पशु-गति की राह पकड़ेगा।

* * *

पशु, मनुष्य, देव और देवाधिदेव

जो विकारों का दास है, वह पशु है। जो विकारों को जीत रहा है, वह मनुष्य है। जो विकारों को अधिकांश में जीत चुका, वह देव है। और जो विकारों को पूर्णत जीत चुका, सदा के लिए जीत चुका, वह मनुष्य होकर भी देवताओं का भी देवता है, देवाधिदेव है, विश्व का विजेता है।

* * *

मनुष्य ही भगवान् है

भगवान् महावीर के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है, परमात्मा है, ब्रह्म है, सिद्ध है, बुद्ध है, जिन है, यदि वह अपने-आपको पहचान ले, सँवार ले, साफ कर ले और पूर्ण बनाले !

*　　　*　　　*

मानवता का केन्द्र

मानव ! क्या तू अपने-आपको पहचानता है ? यदि हाँ तो बता तू कौन है ? तू स्थूल शरीर है या इसके कण-कण में समाया आत्मा ? जो आत्मा की ओर अग्रसर होता है, वह मनुष्य है। और जो शरीर के घेरे में ही आबद्ध है, आगे नहीं बढ़ता, वह नर-देह के रूप में पशु है। मानवता का केन्द्र वस्तुतः आत्मा है, शरीर नहीं।

*　　　*　　　*

कर्तव्य और अधिकार

मानव ! तेरा अधिकार कर्तव्य करने तक है, फल तक नहीं। तू जितनी चिन्ता फल की रखता है, उतनी चिन्ता कर्तव्य की क्यों नहीं रखता ? किसान खेत को जोत-बाव कर तैयार कर

सकता है, बीज बो सकता है, सिंचाई की व्यवस्था कर सकता है, खाद डाल सकता है, रखवाली कर सकता है, परन्तु बीज को अंकुरित करने और उसे धीरे-धीरे विकसित करने का काम तो प्रकृति का है। इस सार्व-भौम अटल सिद्धान्त को, क्या तू, अपने कर्तव्य की कृषि में नहीं अपना सकता ?

* * *

मानव का मूल्य

किसी भी मनुष्य का मूल्यांकन करते समय न उसके धन को देखो, न जन-गण को देखो, और न उच्च पद को देखो ! मनुष्य का वास्तविक मूल्य प्रामाणिकता के साथ अपने यथा-प्राप्त कर्तव्य का पालन करते रहना है। जो मनुष्य जितनी ही अधिक योग्यता और ईमानदारी के साथ अपना उत्तरदायित्व निभाता है, कर्तव्य के लिए जीता-मरता है, वह उतना ही अधिक मूल्यवान् हो जाता है।

* * *

मानव-जीवन का ध्येय

मानव-जीवन का चरम ध्येय त्याग है, भोग नहीं, श्रेय है, प्रेय नहीं। भोग-लिप्सा का आदर्श मनुष्य के लिए सदैव घातक है, और रहेगा।

* * *

मानव जीवन का मर्म

मानव जीवन संसार में प्रत्येक प्राणी के लिए सुख और शान्ति की स्थापना करने के लिए है; व्यक्तिगत भोग-लिप्सा में फंसे रहने और स्वर्ण संचय करने के लिए नहीं।

• • •

मनुष्यता

क्या अच्छा खाना मनुष्यता है? अच्छा खाना तो रईसों के कुत्ते और बिल्ली भी खा लेते हैं। क्या ऊँचे और भव्य भवनों में रहना मनुष्यता है? ऊँचे और भव्य भवनों में तो चिड़ियाँ भी घोंसला बना लेती हैं, कीड़े-मकोड़े भी निवास कर लेते हैं। क्या संस्कृत, प्राकृत आदि भाषा की रचनाओं के पढ़ने में मनुष्यता है? तोता और मैना भी संस्कृत के श्लोक बोल लेते हैं। क्या वीरता और बल में मनुष्यता है? वीरता और बल में तो जंगल का शेर भी बड़ा क्रूर होता है। फिर मनुष्यता है कहाँ? मनुष्यता है ऊँचे विचार और ऊँचे आचार में।

• • •

मानवता का स्रोत

मैंने कठोर पर्वतमालाएँ देखी हैं, और देखी हैं उन पर हरी-हरी घास और झाड़ियाँ ! पत्थर की कठोर चट्टानों से मोती के समान शीतल एव स्वच्छ झरने बहते देखे हैं। क्या मनुष्य पहाड़ से भी अधिक कठोर है, जो उसमें से प्रेम, सहानुभूति और दया का झरना न बहे, हरियाली न फूटे।

*　　　*　　　*

पड़त को तोड़िए

धरती की पडत के नीचे सागर बह रहे हैं। पहाड़ की चट्टान के नीचे झरने उछल रहे हैं। जरा पडत हटाने की देर है और फिर पानी ही पानी ! मनुष्य के स्वार्थी मन की पड़त के नीचे भी मानवता का, दया और करुणा का अपार सागर लहरा रहा है। मन की पड़त को तोड़ कर मानवता का अमृत-झरना बहा देने में ही मानव-जीवन की सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

*　　　*　　　*

मानव-जीवन की भूमिका

यदि तू देवता है, तो कुछ नीचे उतर जा और यदि पशु है, तो ऊपर चढ जा। मानव-जीवन की भूमिका पशुत्व और देवत्व

के बीच की भूमिका है। यहाँ से निःश्रेयस की ओर सीधी पगडंडी जाती है। पशु अवनति में है तो देवता उन्नति में है। परन्तु निःश्रेयस, आत्मिक अभ्युदय दोनों ही जगह नहीं है। वह मानव जीवन में ही है; यदि कोई मानवता के पथ पर चल कर उसे प्राप्त करना चाहे तो।

* * *

चेतना का विकास

साधारण मानव की दृष्टि एक-मात्र अपनी ही देह और इन्द्रियों के भोग-विलास तक सीमित रहती है। उसकी चेतना केवल उसके अपने "मैं" में ही बन्द रहती है आगे नहीं फैलती। ऐसा मानव स्व-रक्षण वृत्ति के फेरे में पड़कर भयंकर-से-भयंकर अन्याय अत्याचार एवं पापाचार करने को कटिबद्ध रहता है। उसका उपास्य-देव एक-मात्र अपना क्षुद्र "मैं" ही है।

जब मनुष्य आगे बढ़ता है, स्व-रक्षण से पारिवारिक रक्षण की चेतना से अनुप्राणित होता है, तो उसका जीवन-क्षेत्र परिवार की सीमा में पहुँच जाता है। इसके आगे समाज-रक्षण और राष्ट्र-रक्षण की विकसित चेतना का सञ्चार आता है। परन्तु रक्षण-वृत्ति के विकास का महत्त्व यहीं तक सीमित नहीं है, उसका चरम विकास तो विश्व-रक्षण की चेतना में ही सन्निहित है। विश्व-

रक्षण की उदार मनोवृत्ति रखने वाला और उसी के अनुसार अपना विश्व-हितंकर आचरण करने वाला मानव ही मानवता का सच्चा पुजारी कहला सकता है, क्योंकि अन्ततो गत्वा विश्व-रक्षण की विराट् वृत्ति में ही मानवता की सर्वोच्च परिणति निहित है। स्व-रक्षण वृत्ति को सर्व-रक्षण वृत्ति में परिवर्तित कर देना ही मानव-जीवन की सर्व-श्रेष्ठ और ज्योतिष्मती दिशा है।

* * *

मानवता

मानव एकमात्र 'स्व' में ही सीमित रहने के लिए नहीं है। मनुष्य की महत्ता उसकी परार्थ-वृत्ति के विकास में ही है। अतएव हमारी हृदय-वीणा का प्रत्येक तार विश्व-मैत्री की पवित्र भावना से प्रतिक्षण झंकृत रहना चाहिए। प्राणी-मात्र के सुख-शान्ति तथा कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना ही मानव-जीवन की सफलता का मूल-मंत्र है, यह अमर सिद्धान्त कभी भी भूलने की चीज नहीं है।

* * *

मनुष्य क्या है ?

मनुष्य न केवल शरीर है, न केवल मन है और न केवल आत्मा है। इन सब की समष्टि का नाम ही मनुष्य है। अतएव

मनुष्य का यह प्रथम एवं परम कर्तव्य है कि वह शरीर, मन और आत्मा तीनों को समान रूप से सन्तुलित रक्खे, इन्हें अव्यवस्थित तथा अस्वस्थ न होने दे।

* * *

मनुष्य की कसौटी

आपत्ति या संकट से घबराओ नहीं। यह सब मनुष्य के चरित्र को परखने के लिए कसौटी है। और यह याद रखना चाहिए कि कसौटी सोने के लिए होती है, लोहे या पीतल के लिए नहीं।

* * *

मनुष्य, पशु और राक्षस

जिसका जीवन संतुलित है, नियमित है, वह मनुष्य है। और जिसका जीवन सन्तुलित नहीं है, नियमित नहीं है, वह यदि अशक्त है, तो पशु है और सशक्त है, तो राक्षस।

* * *

मनुष्य की तीन कोटियाँ

जिसका हृदय पहले बोलता है और वाणी बाद में बोलती है, वह महापुरुष होता है।

जिसकी वाणी पहले बोलती है, हृदय बाद में बोलता है, वह मध्यम पुरुष होता है।

जिसकी पहले-पीछे केवल वाणी ही बोलती है, हृदय कभी नहीं बोलता, वह अधम पुरुष है।

* * *

उत्सर्ग ही महान् है, वस्तु नहीं

इस विराट संसार में साधारण व्यक्ति की शक्ति अति क्षुद्र है। वह बहुत थोडी सेवा कर सकता है। किन्तु जीवन की सफलता शक्ति की क्षुद्रता या विपुलता पर निर्भर नहीं है। अपनी क्षुद्र शक्ति का सम्यग् विनियोग करने वाला व्यक्ति सफल है, फिर चाहे वह कितनी ही अल्प क्यों न हो? एक बूंद ने यदि किसी पिपासाकुल रज-कण की प्यास बुझा दी, तो उसका जीवन सफल हो गया, वह धन्य हो गई।

* * *

उत्तम, मध्यम और अधम

संसार में मनुष्यों की तीन श्रेणियाँ हैं। अधम, मध्यम और उत्तम। आचार्य भर्तृहरि ने कहा है कि 'जो विघ्न के डर से काम का आरम्भ ही नहीं करते, वे अधम जन हैं। मध्यम

पुरुष वे हैं जो साहस के साथ काम को आरम्भ कर देते हैं, परन्तु बाद में विघ्न-बाधाओं के आ जाने पर प्रयत्न-विमुख हो जाते हैं—सब-कुछ छोड़-छाड़ कर भाग खड़े होते हैं। प्रारम्भ कार्य को पूरा करने में कितनी ही बाधायें आयें, संकट आयें, फिर भी प्रयत्न-विमुख न होने वाले—आरम्भ को सफल अन्त में परिवर्तित करने वाले उत्तम पुरुष होते हैं। उत्तम पुरुष जब यह मान लेते हैं कि यह बात न्यायोचित है, अतः होनी ही चाहिए, तो उसे करने के लिए कृत-संकल्प हो जाते हैं और जब तक वह पूरी नहीं होती, तब तक कदापि प्रयत्न-विमुख नहीं होते। हिमालय की चट्टानों को ठुकरा कर आगे फेंकना और अपने लक्ष्य के प्रति सतत गतिशील रहना ही उत्तम पुरुष का अमर आदर्श है।

* * *

मानव और महामानव

मानव और महामानव की कृति तथा उक्ति में महान् अन्तर होता है। मानव का जीवन-मन्त्र है एक गुनी कृति और कई गुनी उक्ति। कभी-कभी तो कृति नहीं केवल उक्ति ही उक्ति! और महामानव का जीवन-मंत्र होता है महान् कृति और अल्प

उक्ति। कभी-कभी तो उक्ति नहीं, केवल कृति ही कृति! उक्ति और कृति में अभेद साधना ही महत्ता का प्रथम लक्षण है।

* * *

परिस्थिति और मानव

परिस्थिति श्रेष्ठ है या पुरुष? परिस्थिति शक्तिशाली है या पुरुष? यह प्रश्न, कहते हैं इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध दार्शनिक एवं इतिहासज्ञ कार्लाइल ने उठाया था। किसी ने भी उठाया हो, यह प्रश्न आज का नहीं, मानव-जाति के आदि काल का है।

ऊपर के प्रश्न का उत्तर दो तरह से दिया जाता रहा है। 'हम मनुष्य बेबस और लाचार हैं। हमारा अस्तित्व ही क्या है? परिस्थिति ही मनुष्य को बनाती और बिगाड़ती है। मनुष्य परिस्थिति का दास है, क्रीतदास! वह नगण्य मानव महान् हो गया? हो गया होगा, उसे परिस्थिति अच्छी मिली होगी। मैं बर्बाद होगया। क्या करूँ? परिस्थिति ने साथ नहीं दिया।' यह एक उत्तर है।

दूसरा उत्तर है—'परिस्थिति कुछ नहीं, मनुष्य ही सब-कुछ है। क्या परिस्थिति बलात् मनुष्य को नीचे-ऊँचे कर सकती है? नहीं, मनुष्य स्वतंत्र है। वह परिस्थिति के हाथ में नाचने वाली कठपुतली नहीं है। शक्तिशाली मनुष्य परिस्थिति को अपने

नियन्त्रण में लेता है, प्रतिकूल को भी अनुकूल बनाता है, और उसका स्वरूप जैसा चाहता है, बनाने में सफल होता है। पुरुष परिस्थिति का विजेता है, दास नहीं। परिस्थिति उसी पुरुष पर अधिकार करती है जो अपने प्रचण्ड पुरुषत्व को पहले ही भुला बैठता है।'

दूसरा उत्तर ही श्रमण-संस्कृति का उत्तर है। श्रमण-संस्कृति में परिस्थिति की नहीं, पुरुष की श्रेष्ठता है। अपने भाग्य का विधाता अनन्त शक्तियों का केन्द्र विश्व का विजेता स्वयं पुरुष ही है, और कोई नहीं! कोई नहीं!! कोई नहीं!!!

* * *

महामानव

महामानव की परिभाषा

साधारण मानव वातावरण से बनते हैं। परन्तु महामानव वातावरण को बनाते हैं। समय और परिस्थितियाँ उनका निर्माण नहीं करतीं, परन्तु वे समय और परिस्थिति का निर्माण करते हैं। महामानव की परिभाषा ही है, 'युग का निर्माता।'

* * *

महानता की पगडंडी

मनुष्य एक ओर महान् होना चाहता है, दूसरी ओर संकटों से डरता है। विपत्तियों से भय खाता है। तूफ़ानों से बचना चाहता है। यह जीवन की विचित्र विसंगति है। महानता की पगडंडी फल-फूलों से लदे उद्यानों में से होकर नहीं जाती। वह तो जाती है काँटों में से, झाड़-झखाड़ों में से, चट्टानों और तूफ़ानों में से। यह वह पगडंडी है, जहाँ मृत्यु, अपयश तथा

मजबूर वासनाएँ पग-पग पर आक्रमण करती रहती हैं। और जब आप अपने लक्ष्य पर पहुँच जायें तो सम्भव है, फिर भी काँटे ही मिलें। एक तत्त्ववेत्ता ने कहा है—

"प्रत्येक महापुरुष पत्थर मारे जाने के लिए है। उसके भाग्य में यही बदा होता है।"

* * *

जनता का कलाकार

महामानव वह है जिसका जन-सेवा ही जिसके जीवन का प्राण है। जनता-जनार्दन ही जिसका आराध्य देव है। सेवक बन कर रहना ही जिसके जीवन की आधारशिला है। अहिंसा और सत्य की पवित्र साधना ही जिसके जीवन का प्रकाशमान इतिहास है। महामानव सत्य का वह प्रकाशस्तम्भ है, जो अपनी मृत्यु के बाद भी हजारों वर्षों तक अन्धेरे में भटकती हुई मानवता को प्रकाश देता रहता है। वह जनता का सर्वश्रेष्ठ कलाकार होता है। जिस प्रकार चतुर कलाकार बेडौल पत्थर के टुकड़े को घड़ घड़ कर सुन्दर सुघड़ सजीव मूर्ति का रूप दे देता है, उसी प्रकार मानवता का कलाकार अविकसित, अलंकृत, दुर्व्यवहार तथा कुरूढ़ियों से परिवेष्टित मानवता को प्रकाश में लाता है। उसे

पशुता के स्तर से ऊँचा उठा कर देवता बना देता है। वही महामानव है, सब से ऊँचा, सबसे महान्!

* * *

पूर्ण मानव

पूर्ण मनुष्य वह है, जो राग-द्वेष की भूमिकाओं से ऊपर उठ कर मानवता के चरम शिखर पर पहुँच गया हो, वासनाओं की गन्दी हवाओं से बच कर आत्म-जीवन की पवित्र सुगन्ध से महक रहा हो।

* * *

महत्ता का राज

क्या तू महान होना चाहता है? यदि हाँ, तो अपनी इच्छाओं को नियन्त्रण में रख। उन्हें बेलगाम न बढ़ने दे और इधर-उधर न भटकने दे। मनुष्य का बड़प्पन इच्छाओं का दमन करने में है, उनका गुलाम बनने में नहीं। महत्ता के पथ पर आने से पहले अपनी व्यक्तिगत वासनाओं और इच्छाओं पर नियन्त्रण करना आवश्यक है।

* * *

महादेव का आदर्श

सब लोग अमृत पीने की फिक्र में हैं। किन्तु, मैं विष की घूट पीकर अमर, अमर हो जाना चाहता हूँ। मुझे फूलों की शय्या नहीं काँटों का पथ चाहिए। मैं प्रकाश की अपेक्षा अंधकार में अच्छी तरह चल सकता हूँ। सुख के साधन मुझे पथ-विचलित कर देंगे अतः मैं उनसे डरता हूँ। मुझे तो दुःख चाहिए दुःख; झंझावात-सा सनसनाता और दावानल-सा दहकता। जीवन-यात्रा पर चलते हुए दुःख निद्रा-मग्न नहीं होने देगा। हमेशा जागरण का सन्देश देता रहेगा।

* * *

भगवान् कौन ?

भगवान् वह जो अपने विकारों से लड़ सके। केवल लड़ सके ही नहीं विजय भी प्राप्त कर सके। और वह विजय भी ऐसी विजय हो, जो फिर कभी पराजय में न बदले।

भगवान् वह, जो संसार की अंधेरी गलियों में भटकता हुआ कभी मनुष्य बना हो। मनुष्य बनकर अपनी मनुष्यता का पूर्ण विकास कर पाया हो। मनुष्यता के समग्र विकास की पूर्ण कोटि ही भगवान् का परम पद है।

क्या वह भगवान् है, जो दुष्टों की दुष्टता का नहीं अपितु दुष्टों का ही नाश करने के लिए अवतरित हुआ हो ? दुष्टता के नाश के लिए पहले दुष्टों का नाश करना, यह तो सभी दुनियादार लोग कर रहे हैं। इसमें भला भगवान् की क्या विशेषता ? भगवान् तो वह, जो दुष्टों के नाश के लिए पहले उनकी दुष्टता का नाश करे। दुष्टता को सज्जनता में परिणत करना, विष को अमृत में बदलना, यही तो है एकमात्र भगवान् की भगवत्ता !

* * *

शाहनशाह

त्यागी ही विश्व में एक-मात्र अभय है। वह तो बादशाहों का भी बादशाह है। भला उसे किस बात की परवाह ? किस बात की चिन्ता ? ऐसे ही फक्कड़ त्यागी के लिए एक सन्त ने कहा है—

> "चाह गई चिन्ता मिटी, मनवा बे-परवाह।
> जिसको कछू न चाहिए, सो ही शाहनशाह ॥"

* * *

पीछे चलो या चलाओ

या तो स्वयं दूसरों के पीछे चलो अथवा दूसरों को अपने पीछे ले चलो। दोनों में से एक बात करनी ही होगी। यदि तुम्हें पीछे रहना पसन्द नहीं है और दूसरों को अपने पीछे चलाने की शक्ति नहीं है, तो फिर विचार करो, अफसोस किस बात का ?

* * *

महत्ता का स्रोत

महापुरुष सिखा-पढ़ा कर, सिखा-पढ़ा कर नहीं बनाए जाते। यह महत्ता का अमर स्रोत तो उनके अन्दर ही छुपा रहता है, जो समय पाकर अपने-आप फूट निकलता है। गुलाब को खिलने की शिक्षा कौन देता है ? कोयल को पंचम स्वर में अलापना कौन सिखाता है ? कोई नहीं!

* * *

मन की महानता

मनुष्य का महत्त्व तन से बड़े होने में नहीं है, प्रत्युत मन से बड़े होने में है। इसी लिए भारतीय संस्कृति के गायकों ने कहा है, महतो महत्वत्तु च। मनुष्य! तेरा मन महान् होना चाहिए।

* * *

महापुरुष और अवसर

साधारण मनुष्य अवसर की खोज मे रहते हैं कि कभी कोई ऐसा अच्छा अवसर मिले कि हम भी अपना महत्त्व दिखाएँ। इस प्रकार सारा जीवन गुजर जाता है, परन्तु उन्हें अवसर ही नहीं मिलता, जिससे वे कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करके दिखा सकें।

परन्तु महापुरुषों के पास अवसर स्वय आते हैं। आते क्या हैं, वे छोटे-से-छोटे नगण्य अवसर को भी अपने काम में लाकर बड़ा बना देते हैं। जीवन का प्रत्येक क्षण महत्त्वपूर्ण अवसर है, यदि उसका किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में विनियोग किया जाय।

*　　　*　　　*

यौवन

सतत यौवन

चिर युवा रहने के लिए यह आवश्यक है कि मन में कभी भी किसी भी प्रकार की दुर्बलता निराशा, उत्साह-हीनता न आने दी जाय। मन की क्षीणता शरीर की क्षीणता की अपेक्षा अधिक भयंकर होती है। नित्य नव-तरंगित रहने वाला उल्लास ही तो यौवन है और यह होता है मन में शरीर में नहीं।

* * *

चुनौती

तूफान आ रहे हैं, तो आने दो! मुझे क्या डर है? मैं दीपक की कँपकँपाती लौ नहीं हूँ जो साँस के झोंके से ही बुझ जाऊँ! मैं तो वह जलता अंगारा हूँ, जो तूफानों के थपेड़े खाकर और अधिक प्रखर होता है, आगे बढ़ता है जलता है और जलाता है। कष्टों और आपत्तियों का मैं हृदय से

स्वागत करता हूँ! जितने भी कष्ट, दु:ख, आपत्ति, असफलता आएँ, सहर्ष आएँ। मैं इन सबसे यथावसर विकास ही प्राप्त करूँगा, ह्रास नहीं।

* * *

पुरुषार्थ

उद्यम ही सब-कुछ है। पुरुषार्थ ही सबसे बड़ी शक्ति है। अपने आप रोटी उठकर मुँह में नहीं चली जाती। 'नहि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः।' सोया आदमी मरे के बराबर है। जाग कर, अंगड़ाई लेकर, खड़े होकर चल पड़ना ही विजय-यात्रा है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ'।

* * *

भाग्य और पुरुषार्थ

आज का मानव-समाज भाग्यवाद की चक्की में बुरी तरह पिस रहा है। जिसे देखो, वही यह कहता है कि भाग्य में धक्के खाने लिखे हैं सो खा रहा हूँ। क्या करूँ, भाग्य साथ नहीं देता, तकदीर ही फूटी हुई है। इस प्रकार भाग्य नपुंसकता का प्रतिनिधि है, निराशा का झण्डाबरदार है।

* * *

स्व-देश का मोह

मैं देखता हूँ, हजारों आदमी घर से बाहर निकलते हुए डरते हैं, हिचकते हैं, रोते हैं। उनके अन्तर्मन में उपभोक्ता की बुद्धि तो है, परन्तु कर्त्ता की बुद्धि नहीं है। उनके जीवन में न कोई अनूठा साहस है और न कोई अनूठी तरंग। कुछ लोग जब अपनी दुर्बलता को स्वदेश-प्रेम के नाम पर छुपाने लगते हैं, तो मैं उनसे पूछता हूँ—सूर्य चाँद और तारों का स्व-देश कौन है और पर-देश कौन है? जो आगे बढ़ कर धूप में छाँह में सरदी में गरमी में प्रतिक्षण चलना जानते हैं, उन पुरोगामियों के लिए सारा विश्व ही स्व-देश है—

'को विदेशः सविद्यानां ! किं दूरं व्यवसायिनाम् !'

ज्ञानयोगियों के लिए कौन-सा विदेश है? कोई नहीं। और कर्मयोगियों के लिए क्या दूर है? कुछ नहीं। बाप के कूप का तातस्य-वश खारा जल पीते रहने वाले सपूत नहीं होते। सपूत वे हैं जो मीठा जल पीते हैं, भले ही कितनी ही दूर से और कितनी ही कठिनाई से लाना पड़े।

* * *

वीर और कायर में अन्तर

वीर और कायर में क्या अन्तर है ? जहाँ वीर का क़दम आगे की ओर बढता है, कायर का क़दम पीछे की ओर पड़ता है। वीर रण-क्षेत्र में अपने पीछे आदर्श छोड़ जाता है, वह मर कर भी अमर हो जाता है। कायर मैदान से मुँह मोड कर भाग खड़ा होता है और कुत्ते की मौत मरता है।

* * *

ओ पुरुषार्थी !

क्या तू पुरुषार्थी है ? यदि पुरुषार्थी है, तो फिर यह आलस्य कैसा ? यह अगड़ाई जंभाई कैसी ? तेरे लिए हिमालय ऊँचा नहीं है और समुद्र गहरा नहीं है। यदि तू अपने अन्दर की शक्तियों को जागृत करे, तो सारा भूमण्डल तेरे एक क़दम की सीमा में है। तू चाहे तो घृणा को प्रेम में, द्वेष को अनुराग में, अन्धकार को प्रकाश में, मृत्यु को जीवन में, किं बहुना, नरक को स्वर्ग में बदल सकता है।

* * *

साधना

१—बढ़े चलो

२—श्रद्धा

३—भक्ति

४—ज्ञान

५—वैराग्य

६—भावना

७—आत्म-शोधन

८—अन्तर्दर्शन

बढ़ चलो

बढ़ चलो

आज तक न मालूम कितने देवी-देवता मनाए, कितने ईंट पत्थर पूजे और कितने गंगा सागर आदि में नहाए-धोए। परन्तु, क्या लाभ हुआ? आत्मा का एक बन्धन भी नहीं टूटा, एक दुःख भी कम न हुआ, एक दाग भी धुल कर साफ नहीं हुआ। व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो? अपनी आत्मा के अन्तर्भाव को प्रकट करो, वीरता से सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ो। लड़खड़ाओ नहीं, गिरो नहीं, वापस मुड़ो नहीं। परमात्म-पद पाना तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। संसार की कोई भी शक्ति ऐसी नहीं, जो तुम्हें अपने इस पवित्र अधिकार से वंचित कर सके।

* * *

साधना-पथ

साधक! देख, कहीं बीच में ही साधना भंग करके मत बैठ जाना? सफलता कहीं इधर-उधर गलियों में पड़ी मिल जाने

वाली चीज नहीं है। वह तो जी की चोट है। उसकी राह मर-मर कर जी उठने की है। देखता नहीं है—सूर्य को प्रातःकाल प्रकाश के शिखर पर पहुँचने तक रात-भर अन्धकार से जूझना पड़ता है?

*　　　　*　　　　*

साधक कौन?

साधकों को जिस साधना के पथ पर चलना है, वह फूलों से आच्छादित, सुसज्जित एवं सुगन्धित राज-पथ नहीं है। वह तो एक दुर्गम पथ है। उस पर पैरों को लहू-लुहान कर देने वाले काँटे और नुकीले पत्थर बिछे पड़े हैं। उस पर वज्र-हृदय को भी दहला देने वाली एक-से-एक भयंकर दुर्घटनाओं का तांता लगा हुआ है। इस पथ पर क़दम रखने से पहिले कबीर के शब्दों में सिर काट कर हथेली पर रख लेना चाहिए। साधक वह, जो काँटों को कुचल कर एवं समुद्रों को चीर कर तूफ़ानों पर शासन करे। पहाड़ों की ऊँची-से-ऊँची ऊँचाइयों पर विचरण करे। संकट उसका मित्र हो और सुख उसका शत्रु।

*　　　　*　　　　*

साधना

ध्याता ध्येय और ध्यान, यह आध्यात्मिक-साधना की त्रिपुटी है। ध्याता भक्त है ध्येय भगवान् है और भक्ति ध्यान है। जब ध्याता ध्येय का ध्यान करते-करते ध्येयाकार हो जाता है ध्येयरूप में परिणत हो जाता है मोह-माया के बन्धनों को तोड़ कर स्व-स्वरूप में लीन हो जाता है, तब वह अपनी साधना का अमृत-फल प्राप्त कर लेता है। आत्मा और परमात्मा की एकता के ज्ञानोदय का नाम ही सच्चा ध्यान है सच्ची भक्ति है। आत्मा से परमात्मा होना भक्त से भगवान् बनना ही भगवत्स्वरूप की उपलब्धि है। जितनी-जितनी ध्येय के प्रति तन्मयता उतनी उतनी ध्येय के प्रति पक्की एकरूपता। तन्मयता की अखण्ड अनुभूति का रसास्वादन किए बिना साधक का कल्याण नहीं है।

• • •

मृत्यु का डर

साधक! मृत्यु से डरता है? क्या यह कोई भयानक वस्तु है? भाई! तेरी भूल ही तुझे तंग कर रही है। मृत्यु कुछ नहीं एक परिवर्तन है! इस परिवर्तन से वह डरे, जो पापाचरण में लगा रहा

हो, धर्म से शून्य हो, मानवता का दिव्य प्रकाश बुझा चुका हो और जिसकी आँखों के आगे अन्याय, अत्याचार का अन्धकार घनीभूत होता जा रहा हो ? जो परिवर्तन विकास के पथ पर हो, और अधिक अभ्युदय का द्वार खोलने वाला हो, उसका तो खुले दिल से स्वागत करना चाहिए। तेरे जीवन की पवित्र महत्त्वाकांक्षा यहाँ नहीं पूर्ण हो सकी, तो मृत्यु के बाद अगले जीवन मे पूर्ण होगी। तेरी साधना का प्रकाश जन्म-जन्मान्तर तक जगमगाता जायगा।

पंजाब के प्रसिद्ध आर्य-समाजी विद्वान् प० गुरुदत्त जी से, जब कि वे जीवन की अन्तिम घड़ियों में थे—मृत्यु के द्वार पर पहुँच रहे थे, लोगों ने पूछा—"इस समय आप इतने प्रसन्न क्यों हैं?" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—"इसलिए कि, इस देह में दयानन्द न हो सका, अब अगले जन्म में इससे उत्तम देह पाऊँगे और दयानन्द बनेंगे।" सब लोग दंग रह गए।

जैनाचार्यों ने कुछ ऐसे ही भावना-प्रसंगों को लक्ष्य में रख कर एक दिन कहा था—'मरण एक महोत्सव है।' महादेवी वर्मा भी कुछ कुछ इसी छायावादी स्वर में गुनगुना रही हैं—
'तरी को ले जाओ उस पार, डूब कर हो जाओगे पार।'

मृत्यु तुझे मित्र नहीं मालूम होती, शत्रु मालूम होती है? यदि तेरी दृष्टि में वह शत्रु है, तो आगे बढ कर उससे लड़

और वीर ! डरता क्यों है, घबराता क्यों है ? क्या तू समझता है कि यह डरे हुए, गिड़गिड़ाते हुए मुझे छोड़ देगी ? कभी नहीं । न स भोर्त सिद्धमति ।'

•   •   •

श्रद्धा

श्रद्धा

श्रद्धा कहो, भक्ति कहो, एक ही बात है। साधक की साधना का मूल-प्राण श्रद्धा है। यदि श्रद्धा नहीं, तो साधना एक निर्जीव शव स्वरूप हो जाती है।

शिव और शव में क्या अन्तर है। 'अ' और 'इ' का ही तो अन्तर है। जहाँ श्रद्धा है, भक्ति है, वहाँ शिव है, परमात्मा है, और जहाँ वह नहीं है, वहा आत्मा एकमात्र शव है, मुरदे की लाश है।

* * *

पहले विश्वासी बनो

तुम चेतन आत्मा हो। जड़, ईंट-पत्थर नहीं। बताओ, तुम क्या बनना चाहते हो? जो बनना चाहते हो, वही बन जाओगे। परन्तु, उसके लिए पहले विश्वासी बनो, योग्य बनो। फूल ज्यों ही महकने की भूमिका में आता है, त्यों ही खिल

बढ़ता है और औरों की सैकड़ों दोषियाँ बिना बुलाए आ-आ कर गुण-गान करने लगती हैं।

* * *

विश्वास

विश्वास मानव-जीवन में सबसे बड़ी शक्ति है। विश्वास का बल ही मनुष्य को संकटों से पार करता है, उसे लक्ष्य पर पहुँचाता है। दृढ़ विश्वासी कभी हारता नहीं थकता नहीं; गिरता नहीं मरता नहीं। विश्वास अपने-आप में अमर औषधि है। विश्वास जीवन है, और अविश्वास मृत्यु है। जिस मनुष्य का अपने ऊपर विश्वास नहीं, अपनों पर विश्वास नहीं जीवन के ऊँचे आदर्शों पर विश्वास नहीं वह संसार में किसी का भी कभी विश्वास-पात्र नहीं बन सकता साथी नहीं हो सकता।

* * *

निष्ठा

वीर पुरुषों की आत्मा को बस एक बार सत्य की झलक दीख जानी चाहिए; फिर वे उस पर सदा के लिए अचल, अटल हो जाते हैं। शरीर भले ही नष्ट हो जाय, प्राण भले ही चले

जायँ; परन्तु क्या मजाल कि सत्य से तिल-भर भी इधर-उधर हो जायँ। जो अपने सिद्धान्तों से हटने का पथ सदा के लिए भूल जाते हैं, उनके शब्द-कोष में 'पथ-भ्रष्ट' होने का शब्द ही नहीं होता।

* * *

आत्म-विश्वास

अपने-आप में विश्वास रखना ही ईश्वर में विश्वास रखना है। जो अपने-आप में अविश्वस्त है, दुर्बल है, कायर है, वह कहीं आश्रय नहीं पा सकता। स्वर्ग के असख्य देवता भी मन के लगडे को अपने पैरों पर खड़ा नहीं कर सकते!

* * *

अपनी-अपनी योग्यता

सूर्य विना किसी पक्षपात या संकोच के सभी को समान-भाव से प्रकाश देता है। परन्तु, दर्पण में केवल प्रतिबिम्ब पड़कर रह जाता है, और सूर्यकान्त मणि सूर्य के प्रकाश को पाकर दूसरी वस्तु को जला देती है। इसमें सूर्य का क्या दोष? अपनी-अपनी योग्यता है। महापुरुषों के सत्सग में बैठकर जिनमें श्रद्धा अथवा प्रेम नहीं है, वे दर्पण की भाँति कम लाभ

उठाते हैं और श्रद्धा प्रेम व भक्ति रखने वाले सूर्यकान्त मणि की भाँति अधिक लाभ उठाते हैं।

* * *

लक्ष्य की स्थिरता

मनुष्य! कुछ करने से पहले अपना लक्ष्य स्थिर कर ले। तुझे कहाँ जाना है—कहाँ नहीं जाना है, क्या करना है—क्या नहीं करना है, क्या बनना है—क्या नहीं बनना है; जब तक तू इस प्रश्न का निर्णयात्मक उत्तर न दे सकेगा तब तक तू कुछ भी न कर सकेगा—कुछ भी न बन सकेगा! एक चित्रकार जब कि अपनी तूलिका को हाथ में लेकर कोई सुन्दर चित्र अंकित करना चाहता है, तो वह पहले से ही अपने मन में कल्पना कर लेता है कि मुझे अमुक आकार को इस-इस प्रकार मूर्त रूप देना है। कोई भी मूर्तिकार हथौड़ी और छैनी उठा कर ज्यों ही पत्थर के टुकड़े को हाथ में लेता है, त्यों ही वह पहले से की गई कल्पना की भाव-भंगिमा उसमें देखने लगता है। गाँव का अपढ़ कुम्हार भी पात्र बनाने से पूर्व मन में यह धारणा कर लेता है कि इस मिट्टी के गोलमटोल पिंड को अमुक पात्र-विशेष के आकार में ढालना है। जीवन भी एक कला है। अतः यह भी अपेक्षा करता है कि आप उसे क्या रूप देना चाहते हैं। लक्ष्य

बाँध कर ही तीर फेंकिए । बिना लक्ष्य के यों ही शून्य चित्त से तीर फेंकते जाइए, लक्ष्य-वेध नहीं हो सकेगा, धनुर्विद्या का पण्डित नहीं बना जा सकेगा ।

*　　　*　　　*

श्रद्धा और तर्क

साधक को श्रद्धा और तर्क की उचित सीमा-रेखा का निर्धारण करना है। तर्क-हीन श्रद्धा जहाँ अज्ञानता के अंधकूप में डाल देती है, वहाँ श्रद्धा-हीन तर्क, अनन्त सार-हीन विकल्प तथा प्रतिविकल्पों की मरु-भूमि में भटका देता है। अतः श्रद्धा की सीमा तर्क पर होनी चाहिए और तर्क की सीमा श्रद्धा पर।

*　　　*　　　*

अविश्वास

अनाज बोने के समय धरती में बीज फेंक देने के लिए भी, जब ग्रामीण किसान को कुछ विश्वास की आवश्यकता है, सुन्दर भविष्य के भरोसे की जरूरत है, तब क्या धर्माचरण के मार्ग में कुछ भी विश्वास अपेक्षित नहीं है ? खेद है कि आज का अश्रद्धालु मानव, ससार के कार्यों में तो सर्वत्र विश्वास का सहारा लेकर चलता है, भविष्य पर भरोसा रख कर आगे बढ़ता है, परन्तु धर्म के मार्ग में, जीवन-निर्माण की राह में,

आज—अभी—इसी घड़ी 'इसी क्षण ही सब-कुछ प्राप्त करना चाहता है। धर्म-फल के प्रति इतनी आसक्ति! धर्म की सर्वोच्च महती अनन्त-असीम प्रभु-शक्ति पर इतना भयंकर अविश्वास!!

* * *

अश्रद्धा

अश्रद्धा अधर्म है। अश्रद्धा की नींव असत्य है और जहाँ असत्य है, वहाँ धर्म कहाँ! श्रद्धा-हीन अविश्वासी का मन अन्ध-कूप है, जहाँ साँप बिच्छू और न मालूम कितने जहरीले कीड़े-मकोड़े पैदा होते रहते हैं। अविश्वासी मन हलाहल विष है। उससे बचकर रहना चाहिए।

* * *

आदर्श और व्यवहार

आदर्श वह जो जीवन की गहराई में उतर कर व्यवहार में आचरण का कण-कण ग्रहण कर ले। न उसे दुःख की गर्म हवाएँ झुलसा सकें और न सुख की ठंडी हवाएँ गुद-गुदा सकें। आदर्श, मन और मनोमय की क्षुद्र सीमाओं से परे होता है। सच्चा आदर्शवादी सत्पुरुष वह है, जिसे संसार के भयंकर-से-भयंकर तूफानी झंझावात भी अपने निर्धारित आदर्श-पथ से विचलित न कर सकें।

* * *

भक्ति

आत्म-देवता की पूजा

मनुष्य ! तेरे अपने अन्दर भी एक देवता है, जिसके मन्दिर में अनादि काल से कोई आरती नहीं सजोई गई है, पूजा नहीं की गई है।

न कभी घंटा बजा है, न घड़ियाल ! और न कभी शंख ध्वनि ही हुई है। कितना भीषण डरावना सन्नाटा है यहाँ ?

अरे ! मन्दिर में झाड़ू-बुहारी तक न लगाई ? कितना कूड़ा है ? बेचारा देवता कूड़े-करकट के ढेर में दब-सा गया है। जरा एकाध बार झाड़ू तो लगाओ, जिससे देवता ठीक से दिखलाई तो पड़े ?

अन्धेरे का भी कोई ठिकाना है ! कुछ भी तो नहीं सूझता ! दीपक जला कर बाहर ही क्यों रख देते हो ? जरा अन्दर भी तो दीपक जलाओ !

सुगन्ध! यहाँ कहाँ सुगन्ध है! दुर्गन्ध के मारे बुरा हाल है! देवता के मन्दिर में इतनी गन्दगी? वेदी पर एक भी तो फूल नहीं चढ़ा है!

हाँ! चन्दन का लेप उस अन्तर-वासी देवता पर करो! फूलों का हार भी अपने हृदय-देवता को चढ़ाओ!

यह आत्म-पूजा ही परमात्मा की पूजा है। बाहर के देवी-देवताओं की अर्चना मात्रा-बाह्य है। बाह्य बन्धन के लिए होता है मुक्ति के, लिए नहीं।

* * *

भगवान और भक्त

जो मनुष्य जितना ही आग के समीप होगा वह उतना ही अधिक प्रकाश पावेगा। आप इसे पक्षपात कहें या और कुछ यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। भगवान् और भक्त का सम्पर्क किन्तु भी ठीक इसी कोटि का है। यहाँ कर्तृत्व और अकर्तृत्व का उतना प्रश्न नहीं जितना कि सम्पर्क की घनिष्ठता और दूरी का प्रश्न है।

* * *

सच्ची पूजा

ईश्वर की पूजा न फल-फूल चढ़ाने में है, और न दीप जलाने में। ईश्वर की सच्ची और श्रेष्ठ पूजा यही है कि मनुष्य ईश्वरीय आदर्शों, अच्छे और भले विचारों को अपने आचरण में उतारे, ईश्वर के निर्देशानुसार अपना जीवन व्यतीत करे।

*　　　*　　　*

कर्मवाद और भक्तिवाद

हम करते हैं और हम ही उसका फल भोगते हैं। यह जैन-धर्म का कर्मवाद है।

भगवान् करता है और भगवान् ही उसका फल भोगता है। यह वैष्णव धर्म का भक्तिवाद है।

जीवन की समस्या दोनों ही वादों से हल हो सकती है, यदि ईमानदारी के साथ उनको जीवन में उतारा जाय तो 'निर्द्वन्द्वता' जीवन का रस है और वह दोनों ही वादों के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

*　　　*　　　*

भक्ति का रहस्य

भक्ति का अर्थ दासता नहीं है, गुलामी नहीं है। भक्ति का अर्थ है—अपने आराध्य-देव के साथ एकता और अभेदता की अनुभूति।

* * *

सच्ची पूजा

ईश्वर की पूजा न फल-फूल चढ़ाने में है, और न दीप जलाने में। ईश्वर की सच्ची और श्रेष्ठ पूजा यही है कि मनुष्य ईश्वरीय आदर्शों, अच्छे और भले विचारों को अपने आचरण में उतारे, ईश्वर के निर्देशानुसार अपना जीवन व्यतीत करे।

* * *

कर्मवाद और भक्तिवाद

हम करते हैं और हम ही उसका फल भोगते हैं। यह जैन धर्म का कर्मवाद है।

भगवान् करता है और भगवान् ही उसका फल भोगता है। यह वैष्णव-धर्म का भक्तिवाद है।

जीवन की समस्या दोनों ही वादों से हल हो सकती है, यदि ईमानदारी के साथ उनको जीवन में उतारा जाय तो 'निर्द्वन्द्वता' जीवन का रस है और वह दोनों ही वादों के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

* * *

भक्ति का रहस्य

भक्ति का अर्थ दासता नहीं है, गुलामी नहीं है। भक्ति का अर्थ है—अपने आराध्य-देव के साथ एकता और अभेदता की अनुभूति।

● ● ●

ज्ञान

अभेद-दृष्टि

ससारी आत्माओं में जितना भी भेद है, वह सब कर्मोपाधि के कारण है। यदि निश्चय दृष्टि के द्वारा शुद्ध आत्म-स्वरूप का निरीक्षण किया जावे, तो भेद-बुद्धि दूर हो जाती है और सभी आत्माएँ समान प्रतीत होने लगती हैं। सच्चा साधक भेद से अभेद में पहुँचता है, सब जीवों को अपने समान समझता है। और जिस साधक ने यह अभेद-दृष्टि पाली, फिर उसके लिये कैसा मोह? कैसा शोक? कैसा राग? कैसा द्वेष?

अभेद-दृष्टि तो समता का अखण्ड साम्राज्य स्थापित करती है।

* * *

अन्तर्ज्योति जगाओ

अपने अन्तर में जब अपने कल्याण और सुधार की प्रेरणा स्वय जागृत होती है, तभी कुछ परिवर्तन हो सकता है, अन्यथा

नहीं। ऊपर की कोई भी शक्ति किसी का बलात् हित-साधन नहीं कर सकती। आप देख सकते हैं कि पतंगे दीपक पर जल मरते हैं। दयालु पुरुष उन्हें बचाने के लिए कृपापूर्वक दीपक को बुझाकर उनका हित करना चाहते हैं, परन्तु पतंगे दूसरे दीपकों पर जल मरते हैं। बाहर के उद्धारकों का अवलम्बन करते समय प्रथम अपने अन्दर भी अन्तर्विवेक-कलिका का विकास प्राप्त करो। आँखें अन्धी हों तो आकाश में लाखों सूर्य उदय हो जायँ तब भी क्या?

* * *

स्वाध्याय

आप जानते हैं स्वाध्याय का क्या अर्थ है? स्वाध्याय का अर्थ केवल कागजी पुस्तकें पढ़ लेना नहीं है। स्वाध्याय का अर्थ है—अपने अन्दर के जीवन की किताब का पढ़ना। 'स्वस्य स्वस्मिन् अध्याय = स्वाध्याय।' अर्थात् अपने अन्दर अपना अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य यही है कि वह अपने को जाने अपने को परखे। 'मैं कौन हूँ कहाँ से आया हूँ और क्या कर रहा हूँ?' इन प्रश्नों का उत्तर जिसने जाना, वस्तुतः उसने ही सब-कुछ जाना। अपने अध्ययन के सिवाय अन्य सब अध्ययन मूर्ख का प्रलाप है, अध्ययन नहीं। जो

ग्रन्थ या शास्त्र आत्मा के अनुकूल हैं, जिन में अन्दर के शास्त्र का प्रतिबिम्ब है, उनके अध्ययन को लोक-भाषा में स्वाध्याय कहा जाता है। परन्तु यह गौण है, और वह मुख्य।

* * *

प्रगति का मार्ग

मनुष्य की आत्मा नाम और रूप की माया से घिरी हुई है। आखिर, ससार है क्या ? कुछ नाम है, तो कुछ रूप है। विशुद्ध जीवन को बाँधने वाले इन खूटों को जड़ मूल से उखाड़े बिना मानवता को प्रगति के लिए मार्ग नहीं मिल सकता।

* * *

सुख और शान्ति

सच्चा सुख और सच्ची शान्ति कहाँ है ? क्या वह बाहर के पदार्थों में है ? उनके योग-क्षेम में है ? नहीं, वह बाहर के सुख साधनों के सग्रह और उनके योग पर निर्भर नहीं है। सच्चे सुख और शान्ति का कोष अन्दर के आध्यात्मिक सन्तोष में निहित है।

* * *

अन्तर्ज्ञान

सच्चा ज्ञान प्रकृति के रहस्यों को खोजने में नहीं है, अपितु अपने भीतर रहस्यों के विश्लेषण में है उनके जाँचने-परखने में है। *प्रकृति उतनी रहस्यमयी नहीं है, जितनी अन्तरङ्ग चेतना।*

* * *

क्रियाकांड और साधना

बाह्य क्रियाकांडों की साधना साधना है, साध्य नहीं। यदि ये क्रियाकांड हमें नम्र और सरल नहीं बनाते आत्म-तत्त्व के पाने में सहायता नहीं पहुँचाते, तो फिर भार हैं, व्यर्थ हैं।

* * *

जड़ और चेतन

जड़ वह है जो अपने को आप ही जानता है। दूसरा कौन है उसे जानने वाला? इस संसार में दो भाई विचरण कर रहे हैं, उनमें एक सुआँखा है तो दूसरा अंधा। क्या आप जान गए, ये कौन हैं? चेतन सुआँखा है तो जड़ अंधा। बस, अब सर्वोपरि सत्य का निर्णय हो गया।

* * *

शत्रु और मित्र

लोग कहते हैं राम ने रावण को मारा। परन्तु क्या यह सच है? रावण को मारने वाला स्वयं रावण ही था, और कोई नहीं। मनुष्य का उद्धार एवं संहार, उसका अपना भला-बुरा आचरण ही करता है, यह एक अमर सत्य है। इसे हमें समझना चाहिए। मनुष्य, अपना शत्रु अपने अन्दर ही क्यों नहीं देखता?

* * *

सूक्ष्म चिन्तन

चिन्तन को सूक्ष्म बनाओ। इतना सूक्ष्म कि वह आत्मा और अनात्मा के रहस्य में गहराई तक प्रवेश पा सके। लोहे की तीक्ष्ण कील हर जगह ज़रा से धक्के से धँस सकती है। परन्तु, लोहे की मोटी छड़ ठोकने पर भी प्रवेश नहीं पाती।

* * *

वैराग्य

वैराग्य

जब आप किसी पहाड़ की ऊँची चोटी पर चढ़ते हैं तो नीचे के सब पदार्थ क्षुद्र दिखाई देते हैं। इसी प्रकार जब साधक वैराग्य की आत्म-सम्मान की ऊँचाई पर चढ़ा होता है तो संसार के सब वैभव, मान प्रतिष्ठा, भोग, विलास तुच्छ एवं क्षुद्र मालूम होते हैं। संसार का महत्त्व उसकी ओर नीचे झुके रहने तक रहता है, दूर ऊँचे चढ़ जाने पर वह नहीं रहता।

* * *

सांसारिक वैभव

अरे, जरा तुम अपनी इच्छाओं और कामनाओं से ऊपर उठो। तुम्हारे ऊपर उठ कर अलग हटने-भर की देर है, इच्छित पदार्थ अपने-आप तुम्हें ढूँढ़ते चले आयेंगे। कामनाओं का वैभव तो शरीर की छाया-जैसा है। छाया को पकड़ने दौड़ोगे,

तो वह हाथ नहीं आएगी, आगे-आगे भागती चली जायगी। परन्तु, ज्योंही पीठ देकर वापस लौटे नहीं कि वह अपने-आप पीछे-पीछे चुप-चाप भागती चली आएगी।

* * *

मनुष्य की अन्वेषणा

भूमण्डल पर आज तक कितने फूल खिले, महके और मुरझा गए! परन्तु किस के जीवन का इतिहास लिखा गया और पढ़ा गया? किसने यह दावा किया कि आने वाला युग मुझ से प्रेरणा प्राप्त करेगा? फिर मनुष्य ही ऐसी इच्छा क्यों करता है? ज़रा सा काम करके वह गुणगान सुनने के लिए उत्कण्ठित हो जाता है! अपना नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित कराना चाहता है। समझता है, भावी सन्तति उससे प्रेरणा प्राप्त करेगी। वह नहीं सोचता कि दूसरे भी तुम्हारे जितनी योग्यता रखते हैं और तुम्हारे से भी दो क़दम आगे बढ़ सकते हैं।

* * *

हमारा लक्ष्य

आत्मा की ओर ध्यान जाता है, तो हम ऊपर उठते हैं, ऊँचे चढते हैं। और जब शरीर की ओर, केवल शरीर की

ओर ही ध्यान वाला है, वो नीचे गिरते हैं, नीचे लुढ़कते हैं। बस, इतने से समझलो—तुम्हें नीचे गिरना है या ऊपर चढ़ना है?

* * *

जीवन का रहस्य

मैं देख रहा हूँ—पानी पर तैरते इठलाते मचलते बुलबुलों को। वे उठते हैं, जल-गर्भ से बाहर आते हैं, कुछ क्षण तैरते हैं और फिर सहसा पानी में डूब कर विलीन हो जाते हैं। कितना क्षण भंगुर जीवन है इनका? क्या मानव जीवन का रहस्य भी बुलबुलों की इस क्षण-भंगुर लीला में सन्निहित नहीं है?

* * *

अस्तित्व का मोह

नदी की बीच धार में देखिए, वह कुछ टीला अपने दोनों ओर बहने वाले जल-प्रवाहों के संघर्ष से गल-गल कर कट-कट कर किस प्रकार प्रतिपल अपनी जीवन-लीला समाप्त कर रहा है?

क्या हम सब भी महाकाल के अविराम प्रवाह में प्रतिपल क्षीण होने वाले वैसे ही कुछ टीले नहीं हैं? हमारा अस्तित्व,

उस टीले से क्या अधिक सुरक्षित है? मैं समझता हूँ, नहीं।

* * *

मानव कितना क्षुद्र है!

मनुष्य बड़े-बड़े विशाल महल खड़े करता है, संगमरमर पत्थर पर लम्बी-चौड़ी प्रशस्तियाँ लिखाता है और उस पत्थर से अपने को अजर, अमर समझ कर अहंकार से फूल उठता है।

परन्तु, उसके इस अहंकार का मूल्य क्या है? वह स्वय इस विराट् विश्व का एक छोटा-सा रज कण है और उसका जीवन है, काल के महासागर में एक क्षणभंगुर नन्हा-सा जल-कण! क्या यह क्षुद्र अस्तित्व अकड़ने-मचलने के लिए है?

* * *

जीवन का आरा

मेरा सांस अन्दर से बाहर जाता है और फिर बाहर से अन्दर आता है। यह बाहर और अन्दर का सिलसिला एक क्षण भी कभी रुके बिना वर्षों से चला आ रहा है। मुझे मालूम नहीं, यह क्या हो रहा है? किन्तु, कुछ ऐसा लगता है, मानो जीवन-कण्ठ पर बड़ी तेज धारवाला आरा चल रहा है, जो जीवन को प्रतिपल काट-काट कर नष्ट किए जा रहा है। लोग कहते हैं,

सांस जीवन का प्रतिनिधि है और मैं कहता हूं कि 'मृत्यु का प्रतिनिधि।'

* * *

अनासक्ति

शहद की मक्खी मत बनो। पदार्थ का भोग करने बढ़े, तो बस उसी में फंस गए; फिर कभी छुटकारा ही न हो। मिश्री की डली पर बैठने वाली मक्खी बनो, ताकि समय पर भोग कर सको और जब चाहो तब उड़ भी सको।

वृक्ष की डाल पर पक्षी बैठा है। यदि डाल टूटे तो पक्षी को क्या? वह उड़ कर आकाश में पहुंच जायगा। हाँ बन्दर को अवश्य चिन्ता है। क्योंकि वह डाल के साथ जमीन पर ही आएगा आकाश में ऊपर उड़कर नहीं जा सकता। संसार-वृक्ष की पदार्थरूपी टहनियों पर भी इसी प्रकार दो तरह के मनुष्य हैं। आसक्त मनुष्य बन्दर है, वह पदार्थ के नष्ट होने पर नीचे गिरता है, रोता है, बिलखता है और पछताता है। अनासक्त मनुष्य पक्षी है वह पदार्थ के नष्ट होने पर ऊपर उड़ता है वैराग्य-भाव में विचरण करता है। संसार के हानि-लाभ को खेल समझता है। फलतः उसे दुःख भी दुःख नहीं होता।

* * *

सुख का केन्द्र

सुख कहाँ है ? वह संसार की विभिन्न सुन्दर वस्तुओं के होने में नहीं, अपितु उन वस्तुओं की अभिलाषा न रहने में है। अभिलाषा की पूर्ति में जो पौद्गलिक सुख होता है, वह सुख, सुख नहीं, दुःख-मिश्रित सुख है, सुखाभास है। सच्चा सुख इच्छा की पूर्ति में नहीं, वरन् इच्छा के त्याग में है। रोग होकर दूर हो जाय, यह क्या स्वास्थ्य है ? स्वास्थ्य यह है कि रोग होने ही न पाए। अतएव सच्चा सुख उसे है, जिसका हृदय शान्त है। हृदय उसी का शान्त है, जिसका मन चंचल नहीं है। मन उसी का चचल नहीं है, जिसको किसी भोग्य वस्तु की अभिलाषा नहीं है। अभिलाषा उसी को नहीं है, जिसको किसी वस्तु में आसक्ति नहीं है। आसक्ति उसी को नहीं है, जिसकी बुद्धि में मोह नहीं है, राग-द्वेष नहीं है। वही तो महान् है, महात्मा है, साक्षात् देहाधिष्ठित परमात्मा है! वही है सच्चिदानन्द! अर्थात् सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप!

*   *   *

भावना

मैं

मैं आत्मा हूँ, ईश्वरत्व के अनन्तानन्त तेज से परिपूर्ण। मैं स्वयं अपने-आप ही अपने भाग्य का विधाता हूँ? भला मैं कभी किसी दूसरे के हाथ का खिलौना बन सकता हूँ? कभी नहीं! कभी नहीं!! कभी नहीं!!!

• • •

विचार और जीवन

आप का भविष्य आपके वर्तमान विचार में है। आप अपने सम्बन्ध में आज जो कुछ भी सोचते हैं विचारते हैं कल आप ठीक हूबहू वही बन जायेंगे। अपने को नीच अधम पापी समझने वाला नीच अधम पापी बनता है और अपने को श्रेष्ठ, पवित्र धर्मात्मा समझने वाला श्रेष्ठ, पवित्र धर्मात्मा बनता है। मनुष्य का जीवन उसके अपने विचारों का प्रतिबिम्ब है।

एक दार्शनिक ठीक ही कहता है—'भाग्य का दूसरा नाम विचार है।'

* * *

अपने-आप को समझिए

आप-अपने को तुच्छ, दीन-हीन और पापी क्यों समझते हैं? आप तो मूल में शुद्ध, बुद्ध, पवित्र, परमात्मा हैं। जरा अपने ऊपर पड़ी हुई विकारों की राख को साफ कर दीजिए, फिर आप किस बात में तुच्छ और हीन हैं? आत्म-वैभव से बढ कर कोई वैभव नहीं। आत्म तेज से बढ कर कोई तेज नहीं।

* * *

स्थित-प्रज्ञ

मैं अजर हूँ, अमर हूँ, अनन्त हूँ। मैं ईश्वर हूँ, ख़ुदा हूँ, गॉड हूँ। न मेरा जन्म है, और न मरण है। मैं महाकाल की भुजाओं से बाहर हूँ। मेरा प्रकाश देश और काल की सीमाओं को समाप्त करने वाला है। मैं महाप्रकाश हूँ—असीम और अनन्त!

मैं सन्त हूँ, सच्चा सन्त। मैं दु ख-सुख के खिलौनों से खेलते समय एक जैसा अट्टहास करता हूँ। न मुझे सम्मान झुका

सकता है और न अपमान न सुख और न दुःख, न हानि और न लाभ न जीवन और न मरण। मैंने जीवन और मृत्यु में समान सौन्दर्य देखने का मार्ग सीख लिया है। मैं स्थित-प्रज्ञ हूँ, अतः प्रत्येक स्थिति में एक-सा रहता हूँ।

• • •

मन की शुद्धि

मनुष्य का मन एक खेत है और अच्छे-बुरे विचार उसमें बोये जाने वाले बीज हैं। जैसा बीज बोया जायगा वैसा ही तो फल होगा। यह नहीं हो सकता कि बीज तो बोए बबूल के और फल लगें आम के। अच्छा फल पाना है तो अच्छाई के बीज बोने चाहिएँ। भगवान् महावीर ने कहा है—"सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला हवन्ति दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला हवन्ति।"

आप पूछते हैं पानी भरने वाले से कि डोल में पानी कैसा है? उत्तर मिलता है—जैसा कुएँ में पानी है वैसा ही डोल में है। यह नहीं हो सकता कि कुएँ में पानी और हो और डोल में और हो। मन एक कुँआ है, विचार उसमें पानी है। मन के विचार ही क्रमशःआगे वाणी में उतरते हैं और फिर कर्म में। अतएव वाणी और कर्म को पवित्र बनाना है, तो सर्वप्रथम मन

को ही पवित्र बनाना चाहिए। आचार का मूल-स्रोत विचार है, और विचार की जन्म भूमि मन है। मन को शुभ संकल्पों की सुगन्ध से भरो, यदि बाहर के जीवन में आचार की सुगन्ध को महकाना है तो।

* * *

भाव-लहरी

वह दिन धन्य होगा, जिस दिन हम सुख-दुःख के घेरे को तोड़ेंगे, जीवन मरण के स्तर से ऊपर उठेंगे, और कभी न क्षीण होने वाले आत्मा के अनन्त सौन्दर्य को प्राप्त करेंगे।

* * *

भावना

मनुष्य का हृदय अच्छाई और बुराई के संघर्ष का अखाड़ा है। उस धन्य दिवस की प्रतीक्षा है, जिस दिन भलाई, बुराई पर विजय प्राप्त कर मनुष्य को अपने वास्तविक अर्थों में मनुष्य बना सकेगी।

* * *

आत्म-शोधन

आत्मदेवो भव

आत्म-देवता संसार के सुख और दुःखों से परे रहता है। न वह पाप-पुण्य की परिधि में आता है और न महाकाल की सीमा से ही बंधता है। उसका जीवन-सौन्दर्य अजर अमर नित्य और शाश्वत है। संसार की कोई भी मोह-माया उसे मलिन नहीं कर सकती।

° • •

बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा

दृश्य वस्तुओं में अहंत्व और ममत्व का भाव बहिरात्म भाव है। अन्तरंग आत्म-तत्त्व के शोधन का भाव अन्तरात्म-भाव है। और पूर्ण वीतराग विज्ञानमय आत्म-तत्त्व का शुद्ध सिद्धत्व-भाव परमात्म-भाव है। बहिरात्मा बहिर्मुख होता है। अन्तरात्मा अन्तर्मुख होता है, किन्तु अपूर्ण। और परमात्मा

सदा सर्वथा अन्तर्मुख ही होता है—पूर्ण शुद्ध, निर्मल तथा शान्त।

* * *

स्वयं परमात्मा बनिए

एक कर्तावादी दार्शनिक कहता है—'हम मिश्री चखना चाहते हैं, मिश्री की डली बनना नहीं चाहते।' उसका अभिप्राय यह है कि 'हम परमात्मा के दर्शन का आनन्द लेना चाहते हैं, परमात्मा बनना नहीं चाहते।' परन्तु मैं इस दार्शनिक विचार में क़तई विश्वास नहीं रखता। मैं कहूँगा—'मैं मिश्री चखना भी चाहता हूँ, और साथ ही मिश्री बनना भी चाहता हूँ। मिश्री अर्थात् अनन्त आत्म-गुणों की अनन्त मधुरिमा। मैं स्वय अपने रस का चखने वाला हूँ। दूसरों के रस पर कब तक ललचाई दृष्टि रक्खूँ? राजा बनने में आनन्द, या राजा के दर्शन करने में?'

ईश्वर या परमात्मा अन्दर ही है, अन्दर ही है, बाहर कहीं भी, किसी भी स्थान पर नहीं। जब यह बात है, तो फिर पूजा किस की करें, ध्यान किस का धरें? उत्तर आज का नहीं, लाखों वर्षों का है—अपना, अपना और अपना। यही कारण है कि श्रमण-सस्कृति का प्रतिक्रमण ईश्वरीय प्रार्थनाओं की ओर प्रगति

नहीं करता वह प्रगति करता है—आत्म-निरीक्षण एवं आत्म मन्थन की ओर।

* * *

उत्थान आत्मा का स्वभाव है

'मनुष्य का गिरना सहज है, उठना कठिन है। पतन की ओर जाना स्वभाव है प्रकृति है और उत्थान की ओर जाना कठिन है, दुष्कर है! संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि पतन स्वभाव है और उत्थान विभाव है। जो धर्मोपदेशक दार्शनिक या विचारक ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं, वे अज्ञान-रात्रि के अन्धकार में भटक रहे हैं। उनके पास मानव जाति को प्रेरणा देने के लिए कुछ भी सन्देश नहीं है। यदि मनुष्य का पतन स्वभाव है और उत्थान विभाव है तो फिर धर्म का उपदेश सदाचार की पुकार इतनाक का शोर किस लिए हो रहा है? क्या कभी कोई अपने स्वभाव से विपरीत भी हो सकता है, उसे छोड़ भी सकता है? कभी नहीं। भगवान् महावीर की दार्शनिक भाषा इस भाषा से सर्वथा विपरीत है। वे कहते हैं, उत्थान सहज है, स्वभाव है, निज परणति है और पतन विभाव है, पर परणति है। उठना सहज है गिरना कठिन है। क्रोध मान माया और काम से क्षमा, नम्रता सरलता एवं उदारता में आना स्वभाव में आना

है, अपने सहज भाव में पहुँचना है। इसके लिए किसी बाह्य आलंबन की आवश्यकता नहीं। हाँ, क्रोध, मान आदि कषाय-भाव में जाना, विभाव में जाना है, अत वह कठिन कार्य है। इसके लिए औदयिक भाव का आलवन चाहिए। तुम्बा पानी की सतह पर तैरता है, यह उसका स्वभाव है, इसके लिए किसी बाह्य साधन की अपेक्षा नहीं है। क्या तुम्बा तैरने के लिए किसी का सहारा लेता है? नहीं, वह अपने अन्त' स्वभाव से तैरता है। और तूम्बे को डूबने के लिए अवश्य ही बाह्य साधन की अपेक्षा रहेगी। पत्थर बाँध दें, वह डूब जायगा। तूम्बा अपने आप नहीं डूबा है, पत्थर ने जबरदस्ती डुबाया है।

यही बात आत्माओं के लिए है। ससार-सागर से तैरना उनका अपना स्वभाव है। और ससार सागर में डूबना? यह विभाव है, कर्मों का या वासनाओं का परिणाम है। वासनाओं को दूर करो, फिर हे विश्व की आत्माओं! तुम सब तैरने के लिए हो, डूबने के लिए नहीं।

* * *

आत्म-शोधन

आत्मा वस्तुत शुद्ध, निर्मल और महान् है, परन्तु वासनाओं के अनादि प्रवाह में पडे रहने के कारण वह अनेकानेक दोषों

और भूलों से बन-सा गया है। कीचड़ में पड़े हुए सोने की तरह अपना स्वरूप ही भुला बैठा है। अतः जब कभी वह ऊपर उठने का प्रयत्न करता है अहिंसा और सत्य की साधना का मार्ग पकड़ता है तो अनादिकालीन कुसंस्कारों के कारण बीच-बीच में भूलों का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। साधक को इस दशा में हताश और निराश नहीं होना चाहिए। अपनी स्वाभाविक पवित्रता में विश्वास रख कर भूलों का संशोधन करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

और—हाँ, भूलों का संशोधन कुछ रोना-धोना और हाय-हाय करना नहीं है। भूलों का संशोधन करने का अर्थ है, भूलों के मूल-उद्गम का पता लगाना और भविष्य में बचे रहने के लिए दृढ़ संकल्पपूर्वक निश्चय करना। अतएव जैन संस्कृति की प्रतिक्रमण-साधना का उद्देश्य पूर्व दोषों को दूर करना और पुनः उस प्रकार के दोषों को न होने के लिए सावधान होना है। यह भूल-संशोधन की पद्धति धीरे-धीरे आत्मा को दोषों से मुक्त करती है अनादि कालीन कुसंस्कारों को दूर करती है और साधक को अपने आत्म-स्वरूप में स्थिर करके अजर अमर चिदानन्द का द्वार खोल देती है।

• • •

भीतरी सफ़ाई

दीप-मालिका आती है तो लक्ष्मी के स्वागत समारोह में मकान साफ किए जाते हैं, कूड़ा करकट बाहर फेंक दिया जाता है, रंग-रोगन और सफ़ेदी सब तरह चमचमा उठती है। परन्तु, मैं पूछता हूँ—मकान तो साफ़-सुथरे हो रहे हैं, किन्तु आपके मन-मन्दिर का क्या हाल है ? कितनी गन्दगी है, कितनी बदबू है, वासनाओं के कूड़े का कितना ढेर लगा है वहाँ ? जब तक आप का मन मैला है, तब तक लक्ष्मी अन्दर कैसे आएगी ? वह बदबू से तंग आकर वापस लौट जायगी। और यदि वह किसी तरह भुलावे में आ भी गई, तो वह गन्दी, मैली, कुचैली होकर भी नहीं रहेगी, चुड़ैल हो जायगी ! और आप जानते हैं, घर में चुडैल का घुस आना, क्या कुछ गुल खिलाता है ?

* * *

आत्म-विजय

आत्म-विजय का मार्ग शरीर, इन्द्रियाँ, मन, सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि लाभ आदि द्वन्द्वों से सर्वथा दूर होकर जाता है।

* * *

आत्मा

मन वाणी और शरीर की समस्त क्रियाओं को चलाने वाली एक चैतन्य शक्ति है जिसे आत्मा जीव या ब्रह्म कहते हैं। यही ज्ञान और आनन्द का केन्द्र है। यदि आत्मा स्वस्थ है, उस में किसी प्रकार का विकार नहीं है, तो दुःख कैसा? धधकती ज्वालाओं में भी अमृत-सागर के स्नान-सा आनन्द आएगा। काँटों से भरी राह में भी फूलों का गुदगुदापन मालूम होगा!

* * *

खोल को तोड़ो

आत्मानुभूति कोई बाहर से प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं है। वह तो अन्दर ही मिलेगी एकमात्र अन्दर ही। शरीर इन्द्रियों और मन की वासना के खोल को तोड़ कर फेंक दो आत्मानुभूति का प्रकाश अपने-आप जगमगा उठेगा।

* * *

सब से बड़ा आदर्श

मनुष्य के सामने सब से बड़ा आदर्श क्या है? मनुष्य के सामने सब से बड़ा आदर्श अपने-आपको परिष्कृत कर, संसार

कर, साफ कर पूर्ण और उत्कृष्ट बनाना है, नर से नारायण बनाना है। गरुड़ की उड़ान के आदर्श गगन-चुम्बी हिम-शिखर हैं, और मक्खी-मच्छरों के आदर्श कूड़े के ढेर। मनुष्य जहाँ बाहर में मक्खी, मच्छर है, वहाँ अन्दर में गरुड़ है। बाहर की उड़ान त्यागकर अन्दर की उड़ान अपनाने में ही मनुष्य की महत्ता है।

* * *

आत्मा और देह

आत्मा नित्य है, देह अनित्य है। आत्मा अजर-अमर है, देह क्षण-भगुर विनाशी है। आत्मा पवित्र है, देह अपवित्र है, आत्मा रोग, शोक, दु ख, द्वन्द्व से परे है, देह इनसे घिरा है।

* * *

आत्मानुभूति और कालमर्यादा

आत्मानुभूति के लिए कितना समय अपेक्षित है ? यह प्रश्न ही अनावश्यक है। वैसे तो अनन्त काल गुजर गया है, आज तक कुछ भी प्रकाश नहीं मिला। और जब प्रकाश मिलता है, तो क्षण भर में मिल जाता है। हजार वर्ष की नींद, जब

टूटती है, तो मिनटों में टूटती है। क्या मनुष्य को बनने में बरसों लगते हैं?

•　　•　　•

आजकल की साधना

एक मनुष्य छेद वाला फूटा घड़ा लेकर क्षीर-सागर में अमृत-रस भरने गया। जब तक वह घड़ा क्षीर-सागर में डूबा रहा तब तक तो भरा हुआ मालूम देता रहा पर ज्योंही ऊपर उठाया कि खाली! आजकल साधकों के साधना-घट की भी यही दशा है। विकारों के छेद बन्द नहीं करते, फिर साधना-घट आध्यात्मिक रस से भरे, तो कैसे भरे?

•　　•　　•

अन्तर्दर्शन

तू सर्व शक्तिमान् है

महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण, ईसा, और मोहम्मद जितने भी ससार के महापुरुष हैं, उन सब की शक्तियाँ तुझमें भी हैं। स्थिर चित्त से एकाग्र होकर विचार ले, तुझे क्या बनना है? फिर तू जो चाहेगा, वही बन जायगा।

* * *

परदा हटाओ

व्यक्ति-गत लोभ, मोह, और स्वार्थ ही मनुष्य की पवित्र ज्ञान-चेतना पर परदा है, जो उसे अधा बना देता है, पथ-भ्रष्ट कर देता है, हिताहित का यथार्थ निर्णय नहीं होने देता। बुद्धि पर से स्वार्थ का परदा हटाओ, सत्य का उज्ज्वल प्रकाश जग-मगाने लगेगा। सत्य के प्रकाश में जो भी निर्णय होगा, वह सर्वोदय की दृष्टि से होगा, फलत सब के लिए मगलमय होगा।

* * *

अन्तर की चिनगारी

मनुष्य! तेरे अन्दर ज्ञान-दीपक जल रहा है। तू केवल उसके ऊपर से अज्ञान की चपनी हटा दे। चिनगारी दब रही है ऊपर आई काई को हटाने के लिए साधना की ओर से फूँक मार।

•   •   •

अन्तर्मुख बनो

आत्मा! तुझे दुनिया की तू तू मैं मैं से क्या लेना-देना है? तू तो बाहर नहीं अन्दर देख! दूसरों को नहीं अपने को निहार। बाहर देखने वाला भिखारी है और अन्दर देखने वाला चक्रवर्ती है, सम्राट् है!

•   •   •

सुख का स्रोत

सच्चे सुख का अखंड स्रोत आत्मा में अपने अन्दर ही है। देह में नहीं, इन्द्रियों में नहीं धन में नहीं तन में नहीं अधिक क्या अन्यत्र कहीं नहीं! कहीं नहीं!! कहीं नहीं!!!

•   •   •

अपने को पहिचान

मनुष्य ! तू जाग, उठ और खड़ा हो जा। यदि तू अपने अन्दर की प्रभुता को पहचान ले, तो फिर तेरा छोटे-से-छोटा मूक संकेत भी नरक को स्वर्ग में बदल सकता है। तेरी शक्तियाँ एक-दो, तीन की गिनती से नहीं गिनी जा सकतीं। उनके लिए तो एक ही शब्द है—अनन्त ! अनन्त !! अनन्त !!!

अरे ! तुम आत्मा हो, फिर भी डरते हो, गिड़-गिड़ाते हो ! तुम्हारा प्रकाश तो वह प्रकाश है, जो सूरज में भी नहीं, चाँद में भी नहीं। तुम्हारी शक्ति तो वह शक्ति है, जो इस विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं है।

* * *

आत्म-चिन्तन

तू न स्त्री है, न पुरुष, न ब्राह्मण है, न शूद्र, न स्वामी है, न दास ! तू तो एक आत्मा है, शुद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, अरूप। क्या तू जड़ कर्म-पुद्गलों के इन विकारी भावों को अपने समझता है ? यदि ऐसा है, तो तुझ से बढ़ कर कोई मूर्ख नहीं, कोई पागल नहीं।

* * *

आत्म चिन्तन

मनुष्य है तो समझ करे कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? क्या करके आया हूँ ? अब क्या कर रहा हूँ ? क्यों कर रहा हूँ ? कहाँ जाना है ? कब जाना है ? क्या कमाया ? क्या खोया ? कितना आगे बढ़ा ? कितना पीछे हटा ? मेरे अन्दर कितना पशुत्व का अंश है ? कितना मनुष्यत्व का और कितना देवत्व का ?

* * *

भावना

तू तो वह आत्मा है जिसे न आँख देख सकती है, न कान सुन सकता है न नाक सूँघ सकती है, न रसना चख सकती है और स्पर्शन छू सकती है। और तो क्या संसार में सूक्ष्म निरीक्षण का सब से बड़ा आविष्कार अब भी तुझे नहीं जान सकता। तू अपना रूप आप ही निहार सकता है। क्या तू इस दिशा में कब प्रयत्नशील होगा ?

* * *

अपने-आप को पहचाना

अपने अन्दर अनन्त ज्ञान, अनन्त चैतन्य अनन्त शक्ति का अनुभव करो। तुम कीड़े बनकर भोग-विलास की कीचड़ में

कुलबुलाने के लिए नहीं हो! तुम गरुड़ हो, अनन्त शक्तिशाली गरुड़! तुम उड़ो, अपने अनन्त गुणों की अनन्त ऊँचाई तक उड़ो!

* * *

अपने-आप को पहचान

सिंह के नवजात बच्चे को गडरिया उठा लाया और बकरी-भेड़ों में छोड़ दिया। बस, वह अपने को भेड़-बकरी ही समझने लगा। परन्तु, ज्योंही एक दिन सिंह को गरजते और भेड़-बकरियों को भागते देखा, तो अपने स्वरूप को समझने में उसे, देर न लगी। स्वयं भी गरजा, भेड़-बकरियाँ भाग खड़ी हुई। आत्मा! तू भी सिंह है, कहाँ जड़ पुद्गल के संग में अपने को भूल बैठा है? तेरी एक गर्जना काफी है, जड़ पुद्गल के विकारी भावों को भागते देर न लगेगी!

* * *

देखने वाले को देखो

आँख नहीं देखती। वह तो एक खिड़की है, उसके द्वारा कोई और ही देख रहा है। वह जब देखता है, आँखें खुली होने पर देखता है, आँखें बन्द होने पर देखता है, सोते भी देखता है और जागते भी देखता है। बस, आँख से परे उस आँख वाले को देखो, देखने वाले को देखो!

* * *

श्रमण-संस्कृति

श्रमण-संस्कृति

महावीर का सन्देश

श्रमण-संस्कृति के अमर देवता भगवान् महावीर का सन्देश है कि क्रोध को क्षमा से जीतो, अभिमान को नम्रता से जीतो, माया को सरलता से जीतो और लोभ को सन्तोष से जीतो!

जब हमारा प्रेम विद्वेष पर विजय प्राप्त कर सके। हमारा अनुरोध विरोध को जीत सके और साधुता असाधुता को झुका सके तभी हम धर्म के सच्चे अनुगामी, सच्चे मानव बन सकेंगे।

• • •

श्रमण-संस्कृति

श्रमण-संस्कृति की गंभीर वाणी हजारों वर्षों से जन-मन में गूँजती आ रही है कि यह अनमोल मानव जीवन भौतिक जगत् की अंधेरी गलियों में भटकने के लिए नहीं है, भोग-विलास की गन्दी नालियों में कीड़ों की तरह कुलबुलाने के लिए नहीं है।

मानव ! तेरे जीवन का लक्ष्य तू है, तेरी मानवता है। वह मानवता, जो हिमालय की बुलंद चोटियों से भी ऊंची तथा महान् है। क्या तू इस क्षण-भंगुर संसार की पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा की भूली-भटकी, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर ही चक्कर काटता रहेगा ? नहीं, तू तो उस मंजिल का यात्री है, जहाँ पहुँचने के बाद आगे और चलना शेष ही नहीं रह जाता—

"इस जीवन का लक्ष्य नहीं है, श्रान्ति-भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं॥"

* * *

महान् संस्कृति

आज सब ओर अपनी-अपनी संस्कृति और सभ्यता की सर्व-श्रेष्ठता के जयघोष किए जा रहे हैं। मानव-संसार संस्कृतियों की मधुर कल्पनाओं में एक प्रकार से पागल हो उठा है। विभिन्न संस्कृति एवं सभ्यताओं में परस्पर रस्साकशी हो रही है। परन्तु, कौन संस्कृति श्रेष्ठ है, इसके लिए एकमात्र एक प्रश्न ही काफी है, यदि उसका उत्तर ईमानदारी से दे दिया जाय तो ? वह प्रश्न है कि क्या आपकी संस्कृति में बहुजनहिताय बहुजनसुखाय की मूल भावना विकसित हो रही है, व्यक्ति स्वपोषण-वृत्ति से विश्व-पोषण की मनोभूमिका पर उतर रहा है, निराशा के

अन्धकार में प्रकाश की किरणें जगमगाती आ रही हैं, प्राणिमात्र के भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के निम्न धरातल को ऊँचा उठाने के लिए इच्छन-मुक्त उत्प्रयत्न होता रहा है? यदि आपके पास इस प्रश्न का उत्तर सच्चे हृदय से 'हाँ' में है, तो आपकी संस्कृति निःसन्देह श्रेष्ठ है। वह स्वयं ही विश्व संस्कृति का गौरव प्राप्त करने के योग्य है। जिसके आदर्श विराट एवं महान् हों जो जीवन के हर क्षेत्र में व्यापक एवं उदार दृष्टिकोण का समर्थन करती हो जिसमें मानवता का ऊर्ध्वमुखी विकास अपनी चरम सीमा को सजीवता के साथ स्पर्श कर सकता हो, वही विश्वप्रतीत संस्कृति विश्व-संस्कृति के स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हो सकती है।

* * *

श्रमण-संस्कृति का आदर्श

श्रमण-संस्कृति का यह अमर आदर्श है कि जो सुख दूसरों को देने में है, वह लेने में नहीं। जो त्याग में है, वह भोग में नहीं।

* * *

श्रमण-संस्कृति और पापी

श्रमण-संस्कृति दानव को मानव के रूप में बदल देने की पवित्र शक्ति में विश्वास रखती है। उसका आदर्श संहार नहीं

सुधार है। उसकी भाषा में दण्ड का अर्थ बदला नहीं, उद्धार है। जिस दण्ड के पीछे अपराधी के प्रति दया न हो, सुधार की भावना न हो, केवल बदले की क्रूर मनोवृत्ति हो, वह दण्ड पाप है, स्वय एक अपराध है। वस्त्र यदि मलिन हो जाय, तो क्या उसे नष्ट कर दिया जाय? मैले वस्त्र को साफ किया जाता है, और फिर पहनने के योग्य बना लिया जाता है। मनुष्य भी अपराध के द्वारा मैला हो जाता है। अतः उसे भी सस्नेह धोकर साफ करो, और शुद्ध मानव बना कर जन-सेवा के क्षेत्र में काम आने योग्य बनाओ। श्रमण-सस्कृति अपराधी के प्रति अधिक दयालुता का व्यवहार करती है, उसी प्रकार, जिस प्रकार कि रोगी के प्रति किया जाता है। अपराध भी एक मानसिक रोग ही है, अत तदर्थ दण्ड के रूप में अपराधी के लिए सुधार चाहिए, संहार नहीं।

* * *

मानव और अदृश्य शक्ति

मनुष्य-जीवन में किसी अदृश्य शक्ति का हाथ नहीं है। मनुष्य किसी के हाथ का खिलौना नहीं है। वह अपने-आप में एक स्वतत्र विराट शक्ति है। वह अपने-आप को बदल सकता है, समाज को बदल सकता है, राष्ट्र को बदल सकता है। और

तो क्या, विश्व को बदल सकता है। नरक को स्वर्ग बना देना मनुष्य के लिए एक साधारण-सा खेल है।

• • •

साम्यवाद और श्रमण-संस्कृति

मैं साम्यवाद से डरता नहीं हूँ। मेरा धर्म श्रमण-संस्कृति का धर्म है और उसका मूलाधार अपरिग्रह है, जो साम्यवाद का ही दूसरा नाम है।

श्रमण-संस्कृति का आदर्श है, कम-से-कम लेना और बदले में अधिक-से-अधिक देना। अपनी इच्छाओं, आवश्यकताओं का क्षेत्र कम करना आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न रखना, अपने समान ही—अपितु अपने से अधिक दूसरों की भूख और ममता का ध्यान रखना जीवन का महत्त्व अपने लिए नहीं; किन्तु दूसरों के लिए समझना यह है श्रमण-संस्कृति के अपरिग्रहवाद की मूल भावना।

'जीओ और जीने दो' यह स्वर है, जो श्रमण-संस्कृति के इतिहास में लाखों वर्षों से मुखरित होता आया है। आज के साम्यवाद का भी तो यही स्वर है। हाँ आज के साम्यवाद के स्वर में हिंसा घृणा बलात्कार और वर्ग-संघर्ष के शोषक चीत्कार एवं हाहाकार भी सम्मिलित हो गए हैं। हमारा कर्त्तव्य

है कि हम चीत्कार और हाहाकार की पशु भावना को दूर करके पारस्परिक सहयोग, मैत्री, प्रेम के बल पर मानव-भावना का मधुर घोष मुखरित करें। आज के साम्यवाद में जहाँ भोगवाद का स्वर उठ रहा है, वहाँ हमें त्यागवाद का स्वर छेड़ना होगा, और यही होगा साम्यवाद का भारतीय संस्करण!

*　　*　　*

जैनत्व

जैन-धर्म और त्याग

जैन-धर्म का त्याग वासनाओं का त्याग है। जैन-धर्म त्याग के लिए अग्नि में जिन्दा जल जाने को नहीं कहता, गंगा या यमुना में डूब मरने को नहीं कहता, पहाड़ की ऊँची चोटियों से कूद जाने या बर्फ में गलकर मर जाने को नहीं कहता। भूख प्यास, सरदी गरमी सह लेना भी कोई त्याग नहीं है। यह त्याग तो अनेक अपराधी जेल-खाने के कैदी भी कर लेते हैं। अपने-आप को कामनाओं के जाल से मुक्त कर लेना ही सच्चा त्याग है। त्यागी के लिए जीवन या मरण महत्त्व-पूर्ण नहीं है, महत्त्व पूर्ण है, कामना-रहित हो जाना।

•　　　•　　　•

जैन-संस्कृति और मानवता

जैन-संस्कृति मानव-संस्कृति है। मानवता के विकास की चरम सीमा को सर्वतोभावेन स्पर्श करना ही जैन-संस्कृति का

अमर लक्ष्य है। यही कारण है कि जैन साहित्य का प्रत्येक शब्द मानव-जीवन की पवित्रता एवं सर्व-श्रेष्ठता के प्रशस्त राग से अलकृत एव झंकृत है।

* * *

जैनत्व और जातिवाद

जैनत्व किसी एक व्यक्ति, जाति या संप्रदाय की सम्पत्ति नहीं है। वह तो उसकी सपत्ति है, जो इसे सच्चे मन से अपनाए, भले ही फिर वह ब्राह्मण हो या शूद्र, हिन्दू हो या मुसलमान, भारतवासी हो या और कहीं का निवासी। जैनत्व पर मानव-मात्र का एक समान अधिकार है।

* * *

जैन-धर्म

जैन धर्म, मानव-धर्म है। वह मानवता के पथ पर चलने के लिए प्रेरणा देता है। और वह मानवता क्या है? मनुष्य में मनुष्य बनकर रहने की योग्यता और कला!

* * *

जैन-संस्कृति और पुरुषार्थ

जैन सस्कृति पुरुषार्थ-प्रधान सस्कृति है। हताश और निराश के लिए उसका सदेश है कि क्या भाग्य के गीत गा रहे हो?

भाग्य है क्या चीज ? वह अतीत पुरुषार्थ का वर्तमान परिणाम ही तो है ! भाग्य के चक्कर से निकलकर कुछ कर्म करो कुछ पुरुषार्थ करो। अन्यथा जीवन पर एक असह्य भार लद जायगा जो मनुष्य को कुचल कर मिट्टी में मिला देगा।

* * *

साम्य-योग

संसार में जितने भी सुखोपभोग के साधन हैं, सब में सब मनुष्यों का बराबर का हिस्सा है। किसी एक व्यक्ति, जाति समाज या राष्ट्र को उस पर एकाधिपत्य का कोई अधिकार नहीं है। हर चीज का न्यायपूर्वक समुचित बँटवारा करने पर ही पृथ्वी पर अखण्ड शान्ति का स्वर्ग स्थापित हो सकता है। बँटवारा करते समय हर मनुष्य को इसमें अपना सगा भाई समझना है, विचारों में भी और व्यवहार में भी। अकेले बैठ कर खाना महापाप है—गुनाह है। भगवान् महावीर ने कहा है— दुनिया में भले ही किसी और की मुक्ति हो जाय परन्तु बाँट कर नहीं खाने वाले की मुक्ति कभी नहीं हो सकती—

असंविभागी नहु तस्स मोक्खो।

यह कहाँ की मनुष्यता और न्याय वृत्ति है कि हमारा सगा भाई मनुष्य भूखा और नंगा रहे, और हम आवश्यकता

से अधिक खाएँ, आवश्यकता से अधिक पहनें, आवश्यकता से अधिक सुख-साधन संग्रह कर उस पर साँप की तरह फन फैलाए बैठें। आवश्यकता से अधिक संग्रह मनुष्य को राक्षस बनाता है। और अपनी आवश्यकताओं को घटा कर यथावसर अपने सुख-साधनों में दूसरों को भी साझीदार बनाना ऊँचे दर्जे की मनुष्यता है। यह मनुष्यता ही विश्व की मूलाधार वस्तु है।

* * *

जैन-अहिंसा

जैन-धर्म की अहिंसा इतनी सूक्ष्म और इतनी विराट है कि उसका अनुसरण करना कुछ लोग असाध्य एवं अव्यवहार्य समझते हैं। परन्तु, क्या वस्तु-स्थिति ठीक ऐसी ही है? चीनी प्रोफ़ेसर तान युन-शान जैन अहिंसा मार्ग के सम्बन्ध में उपर्युक्त मिथ्या धारणा का निराकरण करते हैं। यह मार्ग असाध्य इस लिए प्रतीत होता है कि मानवता अभी इतनी प्रगति नहीं कर पायी है। जब मानवता का पर्याप्त विकास हो जाएगा और वह एक उच्चतर स्तर पर पहुँच जाएगी, तो अहिंसा को सभी लोग व्यवहार्य एव आदरणीय मानने तथा बरतने लगेंगे।

बीसों सन्त की वाणी में अहिंसा के देवता भगवान् महावीर की वाणी का स्वर गूंज रहा है जिसमें उन्होंने कहा है—'सव्व भूयप्प-भूयस्स—'

—अर्थात् सवभूतात्म भूत बनो।

* * *

जैन-धर्म आत्म-धर्म

जैन-धर्म वीतराग भावना का धर्म है। अतः इसमें आज के साम्प्रदायिक पक्षपात, कदाग्रह या मताग्रह को कहाँ स्थान है? जो अपने शरीर पर भी मोह नहीं रखता वह भला शरीर पर लगे मत-चिन्हों का क्या मोह रखेगा? धर्म का सम्बन्ध आत्मा से है। धर्म न शरीर में है न शरीर पर के चिन्हों में। मठ, मन्दिर और मस्जिदों की तो बात ही क्या है?

* * *

जैनत्व

जैनत्व जीवन-संघर्ष का दूसरा नाम है। अतएव यह हमें संघर्ष का सन्देश देता है कि जहाँ एक ओर आत्मा के विकारों को दूर करने के लिए धर्म-साधना के पथ पर संघर्ष करो वहाँ समाज के विकारों और बुराइयों को दूर करने के लिए

अन्याय और अत्याचार को मिटा कर शान्ति स्थापना के लिए भी संघर्ष करो।

अत्याचार का डटकर विरोध करना और उसे नष्ट करना, पाप नहीं है, प्रत्युत एक पवित्र कर्तव्य है। प्रत्येक संघर्ष के मूल में पवित्र संकल्प होना चाहिए, फिर कोई पाप नहीं।

* * *

जैनधर्म की सार्वभौमता

जैन-धर्म में जीवमात्र का समान अधिकार है। यहाँ देश, जाति या कुल आदि के कारण किसी प्रकार की भी प्रतिबन्धकता नहीं है। फिर हमें क्या अधिकार है कि हम एक सार्वजनिक तथा सार्वभौम धर्म को अमुक देश, जाति अथवा संप्रदायवाद के क्षुद्र घेरे में अवरुद्ध रक्खें? धर्म को तो पवन के समान सर्व-स्पर्शी होना चाहिए।

* * *

आत्मदेवो भव

तू स्वयं ईश्वर है

ओ मानव ! तेरा सत्य तेरे अन्दर है; बाहर नहीं। तू जीवित ईश्वर है। अपने-आप को जरा ऊंचा कर रख। फिर, जो चाहेगा हो जाएगा।

● ● ●

सारा दायित्व अपने ऊपर

तुम किस भाग्य-विधाता का सहारा खोज रहे हो ? क्या तुम्हारे अलावा कोई और भी तुम्हारे भाग्य का निर्माण कर सकता है ? तुम्हारे जीवन के पृष्ठ मनचाहे ढंग से बदल सकता है ? तुम खड़े हो, अपने पैरों पर, तुम आगे बढ़ो अपने पैरों पर ! तुम्हारे पैर ही तुम्हें मंजिल पर ले जा सकते हैं। जो विचारोगे वही बन जाओगे स्वर्ग और नरक तुम्हारे ही अन्दर

हैं। दार्शनिक भाषा में उत्तम विचार का नाम स्वर्ग है और नीच विचार का नाम नरक है।

* * *

आत्मा ही परमात्मा है।

जैन-धर्म के अनुसार आत्मा, शरीर और इन्द्रियों से पृथक् है। मन और मस्तिष्क से भी भिन्न है। वह जो कुछ भी है, इस मिट्टी के ढेर से परे है। वह जन्म लेकर भी अजन्मा है और मर कर भी अमर है।

कुछ लोग आत्मा को परमात्मा या ईश्वर का अंश कहते हैं। परन्तु, वह किसी का भी अंश-वंश नहीं है, किसी परमात्मा का स्फुलिंग नहीं है। वह तो स्वयं पूर्ण परमात्मा है, विशुद्ध आत्मा है। आज वह बेबस है, बे-मान है, लाचार है, परन्तु, जब वह मोह-माया और अज्ञान के परदों को भेद कर, उन्हें छिन्न-भिन्न कर अलग कर देगा, तो अपने पूर्ण परमात्म-स्वरूप में चमक उठेगा। अनन्तानन्त कैवल्य-ज्योति जगमगा उठेगी उसके अन्दर।

* * *

कस्मै देवाय

विद्या विद्या के लिए कुछ अर्थ नहीं रखती। विद्या का महत्त्व चरित्र-बल के विकास में है। भारत के एक ऋषि ने कहा है कि "जो लोग केवल विद्या के लिए ही विद्या की पूजा करते हैं वे अन्धकार में जाते हैं।"

*   *   *

अपना आदर अपने हाथ

तुम शिकायत करते हो कि कोई कद्र नहीं करता कोई पूछता नहीं। लोगों से झगड़ने और शिकायत करने से क्या लाभ? तुम पहले स्वयं अपने को योग्य बनाओ फिर जो चाहोगे, हो जाएगा। जवाहर का काम पहले अपनी योग्यता प्रमाणित कर देना है; फिर उसके लिए सोने की अंगूठी का चमकता हुआ सिंहासन अपने-आप तैयार है।

*   *   *

क्यों और किस लिए?

पहाड़ की गहरी गोद में जहाँ कोई न पहुँच सके, गुलाब का एक फूल खिला हुआ था। मैंने पूछा "तू यहाँ किस लिए

खिला हुआ है ? न कोई देखता है, न सुगन्ध लेता है। आखिर, तुम्हारा क्या उपयोग है यहाँ ?"

उसने उत्तर दिया—"मैं इस लिए नहीं खिलता कि कोई आकर देखे या सुगन्ध ले ! यह तो मेरा स्वभाव है। कोई देखे या न देखे, मैं तो खिलूँगा ही।"

मैं मन में सोचने लगा—"क्या मानव भी निष्काम कर्मयोग का यह पाठ सीख सकेगा ?"

* * *

किस के लिए

सूरज और चाँद चमकते हैं, विश्व को प्रकाश देने के लिए। वृक्ष फूलते हैं और फलते हैं, दूसरों को आनन्दित करने के लिए। नदियाँ मीठा पानी लेकर बहती हैं, दूसरों की प्यास तथा तपत शान्त करने के लिए। क्या मनुष्य भी दूसरों के लिए जीना सीख सकेगा कभी ?

* * *

ईश्वरत्व की अनुभूति

अन्तर्भाव प्रकट एवं विकसित हो रहा है या नहीं—इसकी भी पहचान है, यदि तुम पहचान सको तो ! जब तुम क्रोध में नहीं,

क्षमा में होते हो; अहंकार में नहीं नम्रता में होते हो; माया में नहीं सरलता में होते हो, लोभ में नहीं सन्तोष में होते हो; तब तुम आत्मभाव के प्रकाश में होते हो! यह पवित्र घड़ी तुम्हारे लिए ईश्वरत्वानुभूति की घड़ी है।

* * *

कर्मवाद

जैसा कर्म, वैसा भोग

आग लगाने वालों के भाग्य में आग है और तलवार चलाने वालों के भाग्य में तलवार है। जो दूसरों की राह में काँटे बिछाते हैं, उन्हें फूलों की सेज कैसे मिलेगी?

* * *

कर्मवाद

कर्मवाद का सिद्धान्त साधक के लिए धैर्य और साहस का सिद्धान्त है। जब हम अपने ही पूर्व कुकर्मों के फल-स्वरूप त्रास और दु:ख पाते हैं, तो बड़ी सहिष्णुता एवं धैर्य से उसे सहन कर सकते हैं। अपने किये का किस पर दोष दें? और यह विश्वास कि यदि इस जीवन में सुकर्म करेंगे, तो हमारा शेष जीवन और अगले जन्म का जीवन भी सुखमय होगा, हमें सत्कर्म के लिए नवीन स्फूर्ति देता है। इसी प्रकार जब हम यह विश्वास

कर लेते हैं कि दूसरे लोगों को भी पूर्व जन्म के कुकर्मों के कारण ही दुःख भोगना पड़ रहा है अतः आवतों का शिकार होना पड़ रहा है, तो हमें उनपर विद्रोह एवं वैर की भावना न आकर सहज ही दया-भाव आने लगता है और हम दूसरों का दुःख दूर करने के लिए उत्साहित हो जाते हैं।

ईश्वर या देवदूतों के नाम पर मनुष्य न जाने कितने पाप कर्म करता है न जाने कितने अपराध अन्याय अत्याचार करता है। क्योंकि वह समझता है कि उसका रक्षक तो है ही। फिर भला उसे डर क्या ? ईसा ने कहा है— "मैं दुनिया के पापात्माओं का उद्धार करने के लिए सूली पर चढ़ रहा हूँ।" मुस्लिम धर्म में कहा है—"खुदा जब कयामत के दिन सब आत्माओं का इन्साफ करेगा तो पास बैठे हुए मुहम्मद से पूछेगा—बता तेरी राय क्या है ? और मुहम्मद जिसके लिए सिफारिश कर देंगे वह अपराधों से बरी कर दिया जायगा। और वह सिफारिश किसकी करेगा ? उसकी जो ईश्वर और पैगम्बर पर ईमान ले आयगा।" कृष्ण ने भी कहा है— "मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा किसी तरह की चिन्ता न कर—

'अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'।

विश्व में श्रमण-संस्कृति के उन्नायक महावीर और बुद्ध ही ऐसे महापुरुष हैं, जो किसी प्रकार का अनुचित आश्वासन नहीं

दे गए हैं। उन्होंने यही कहा है कि "ईश्वर या देवदूत कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुम्हें पापों से मुक्ति दिला सके। जो कर्म किए हैं, वे अवश्य भोगने होंगे। तुम्हारा अपना शुद्ध आचरण ही तुम्हारी रक्षा कर सकता है।"

श्रमण-संस्कृति का यह आदर्श पापों के फल से नहीं, अपितु पापों से ही बचने की प्रेरणा देता है।

*　　　*　　　*

धर्म और अधर्म

धर्म

मानव-प्रेम

अखिल विश्व के प्राणियों में आत्मानुभूति करना ही सबसे बड़ा धर्म है, सबसे बड़ी मानवता है। अपने साढ़े तीन हाथ के मानवाकार मृत्पिंड में ही आत्मानुभूति होना और अन्यत्र न होना समस्त झगड़ों की जड़ है। अधिकतर संकट और आपत्तियाँ इन्हीं लोगों से पैदा होती हैं, जो दूसरे को अपना नहीं समझते और अतएव निश्छल प्रेम करना नहीं जानते।

° • •

धर्म और वेष-भूषा

अरे! तुम यह क्या कर रहे हो? धर्म को दाढ़ी-चोटी से बाँध रहे हो, चौके-चूल्हे में धर रहे हो, छापे-तिलक तथा यज्ञोपवीतों पर टाँग रहे हो! क्या तुम्हारा धर्म इन्हीं बातों में

है ? तुम अनन्त, असीम धर्म को सान्त, ससीम, बाह्य चिह्नों एवं क्रियाकाण्डों में अवरुद्ध नहीं कर सकते !

* * *

विश्व-बन्धुत्व

धर्म किसी अमुक-विशेष क्रियाकाण्ड में नहीं है। वह है, मनुष्य के मन में रही हुई प्रेम की बूँद को सागर का रूप देने में। प्रेमाचरण का विराट् रूप ही धर्म है।

जैन धर्म कहता है—'सव्व-भूयप्प-भूयस्स' अर्थात् विश्व के सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझो, प्राणिमात्र में आत्मानुभूति करो।

* * *

धर्म का स्वरूप

तलवार के सहारे फैलने वाला धर्म, धर्म नहीं हो सकता। और वह धर्म भी धर्म नहीं हो सकता, जो सोने चांदी के चमकते प्रलोभनों की चकाचौंध में पनपने वाला हो। सच्चा धर्म वह है, जो भय और प्रलोभन के सहारे से ऊपर उठ कर तपस्या और त्याग के, मैत्री और प्रेम के उदयुच्च भावना-शिखरों का सर्वाङ्गीण स्पर्श कर सके।

* * *

धर्म जोड़ता है, तोड़ता नहीं

जो धर्म किसी के यहाँ भोजन कर लेने से या किसी को छू लेने मात्र से अपने को अपवित्र मानता हो मनुष्य-मनुष्य में घृणा का भेद-भाव रखता हो, वह धर्म नहीं अधर्म है महान अधम है। धर्म का काम मानव-समूह की बिखरी कड़ियों को जोड़ना है, तोड़ना नहीं।

* * *

सत्य

सत्य एक जलती हुई चिनगारी है। यह लाखों मन असत्य के काठ को जला कर भस्म कर सकती है।

* * *

हम आग लगाना क्या जानें?

वह धर्म क्या जो आग लगाता चले; छुरियाँ कट-कटाता चले! सच्चा धर्म तो प्रेम और करुणा के अमृत-जल से घृणा और नफ़रत की धधकती आग को बुझाता है। सच्चे धर्मानुयायी लोगों की हृदय-वीणा से एकमात्र यही अमर स्वर झंकृत होता है—

"हम आग बुझाने वाले हैं, हम आग लगाना क्या जानें?

* * *

है ? तुम अनन्त, असीम धर्म को सान्त, ससीम, बाह्य चिह्नों एवं क्रियाकाण्डों में अवरुद्ध नहीं कर सकते !

*　　*　　*

विश्व-बन्धुत्व

धर्म किसी अमुक-विशेष क्रियाकाण्ड में नहीं है। वह है, मनुष्य के मन में रही हुई प्रेम की बूँद को सागर का रूप देने में। प्रेमाचरण का विराट् रूप ही धर्म है।

जैन धर्म कहता है—'सव्व भूयप्प-भूयस्स' अर्थात् विश्व के सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझो, प्राणिमात्र में आत्मानुभूति करो।

*　　*　　*

धर्म का स्वरूप

तलवार के सहारे फैलने वाला धर्म, धर्म नहीं हो सकता। और वह धर्म भी धर्म नहीं हो सकता, जो सोने चांदी के चमकते प्रलोभनों की चकाचौंध में पनपने वाला हो। सच्चा धर्म वह है, जो भय और प्रलोभन के सहारे से ऊपर उठ कर तपस्या और त्याग के, मैत्री और प्रेम के उदयुच्च भावना-शिखरों का सर्वाङ्गीण स्पर्श कर सके।

*　　*　　*

धर्म-साधना का लक्ष्य

क्या आपकी धर्म-साधना आपको राग-द्वेष की जहरीली लपटों से बचाती है? मोह एवं घृणा से मुक्ति दिलाती है? यदि नहीं तो फिर आपको विचारना चाहिए कि भूल कहाँ है?

* * *

धर्म और सम्प्रदाय

सम्प्रदाय और धर्म में बड़ा भारी अन्तर है। सम्प्रदाय शरीर है, तो धर्म आत्मा है। सम्प्रदाय सरोवर है तो धर्म जल है; सम्प्रदाय फूल है, तो धर्म सुगन्ध है; सम्प्रदाय फल है तो धर्म रस है। धर्म-शून्य सम्प्रदाय मानव जाति के लिए विष है, उसके त्याग में ही संसार का कल्याण है।

* * *

धर्म और जीवन

धर्म और कर्तव्य वार-त्योहार की चीज नहीं है जो उस दिन इष्ट मित्रों के साथ बैठ कर मिठाई की तरह चखा जाय। वह तो जीवन में नित्यप्रति काम आने वाला अन्न-जल है। अन्न-जल भी क्या, वह तो स्वच्छ हवा है जिसके बिना क्षण-भर भी

धर्म का सवाल

सच्चा धर्म यह नहीं पूछता कि तुम गृहस्थ हो या साधु हो। वह तो जब भी पूछता है, यही पूछता है कि साधक तेरा क्रोध, तेरा अंहकार, तेरा दंभ, और तेरा लोभ कितना घटा है, कितना बढ़ा है ?

*　　　*　　　*

धर्म की परीक्षा

धर्म को न पुराना होने की कसौटी पर चढ़ाओ और न नया होने की कसौटी पर। धर्म का महत्व उसकी स्व-पर हितकारिणी पवित्र परम्पराओं एव आचार-विचार में है, नये-पुरानेपन में नहीं।

*　　　*　　　*

धर्म का लक्ष्य

धर्म का लक्ष्य क्या है ? विकारों से मुक्ति, वासनाओं से मुक्ति। और अत में परम सत्य की साधना के बल पर सदा—काल के लिये जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति।

*　　　*　　　*

धर्म और प्रलोभन

जो धर्म, एक ओर नरक का डर दिखाता है एवं दूसरी ओर स्वर्ग का प्रलोभन बताता है; वह धर्म क्या लोक जनता का कल्याण करेगा? सच्चा धर्म सत्य के अमर स्वर का गायक होता है, डराने और ललचाने वाला नहीं।

• • •

सत्य और सम्प्रदाय

वह सत्य ही क्या जो किसी एक व्यक्ति या सम्प्रदाय की सीमा में घिर कर रह जाय! सत्य अनन्त है, अतः वह सीमित मान्यताओं एवं क्रियाकाण्डों में सीमित नहीं हो सकता।

• • •

सब से बड़ा धर्म

संसार का सबसे बड़ा धर्म कौन-सा है? जो मनुष्य को 'स्व'—अपने में सन्तुष्ट रहना सिखाए और 'पर' में ललचाने से बचाए।

• • •

जीवित नहीं रहा जा सकता। भगवान् सत्य की पूजा नित्य ही करनी चाहिए। जो लोग सत्य की पूजा के लिए पूर्णिमा या अमावस्या, रविवार या मंगलवार, अथवा शुक्रवार की बात सोचते हैं, वे सत्य को पूजा नहीं, सत्य की विडम्बना करते हैं।

* * *

धर्म और अधर्म

अन्तर्मुख चेतना धर्म है और बहिर्मुख चेतना अधर्म! यह एक सक्षिप्त सूत्र है, और इसका विस्तृत भाष्य या महाभाष्य है कि यदि मनुष्य अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, दया, करुणा, क्षमा, शील, सन्तोष, तप, त्याग आदि आत्म-भाव की ओर अग्रसर है, तो वह धार्मिक है। और यदि वह विषयाभिमुख होकर क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि कषाय-भाव की ओर अग्रसर है, तो अधार्मिक है। धर्म और अधर्म का मूल स्वरूप बाहर की स्थूल धर्म-परम्पराओं में नहीं मिलता। वह मिलता है, मानव के अन्त करण के अन्धकार और प्रकाश में। अन्दर में जागरण है, तो धर्म है, और यदि अन्दर का देवता सोया पड़ा है, तो अधर्म है।

* * *

है जिसे हर कोई देख सकता है, जान सकता है। धर्म के सूक्ष्म रूप की रक्षा के लिए बाहर का स्थूल आवरण आवश्यक है। परन्तु यदि ऐसा हो कि सुन्दर, सचित्र रंग-बिरंगा लिफाफा हाथ में आ जाए और खोलने पर पत्र न मिले तो यह कितना मर्म-भेदक परिहास है! आजकल के धर्म-पंथों को इससे बचना चाहिए।

* * *

बाह्य क्रिया काण्ड

अन्तर्भावना से शून्य बाहर का मोहक क्रिया-काण्ड वैसा ही है, जैसा कि प्राण-शून्य मृत शरीर का मोहक रूप। हृदय की गति के अभाव में रूप की मोहकता कितनी देर जीवित रहेगी? मृत रूप के भाग्य में सड़ना लिखा है और वह देर-सबेर एक दिन सड़ कर रहेगा।

* * *

धर्म-शून्य पंथ

मैं धर्म से शून्य मत, पंथ या सम्प्रदाय को वैसा ही मानता हूँ जैसा कि आत्मा से शून्य निर्जीव शरीर को। चैतन्य-शून्य शरीर सड़ता नहीं, सड़ता है। इसी प्रकार धर्म से शून्य

एक म्यान में एक तलवार

राम और रावण एक सिंहासन पर कैसे बैठ सकते हैं? नहीं बैठ सकते हैं न? तब फिर मन के सिंहासन पर भगवान् और शैतान की एक प्रतिष्ठा कैसे की जा सकती है? या तो अपने मन में भगवान् को जगह दो या शैतान को। दोनों में से एक को विदा करना होगा। शैतान के रहते भगवान् कैसे अन्दर आ सकते हैं? राम को शैतान के सिंहासन पर बैठाने के लिए रावण को नीचे उतारना ही होगा।

* * *

प्रेम और मोह

वह प्रेम है, जिसमें वासना की तनिक-सी भी दुर्गन्ध न हो, दुर्भावना का कीड़ा न हो! जो गंगा की धारा के समान स्वच्छ हो, निर्मल हो, पवित्र हो! और मोह! मोह वह है, जिसमें वासना की गंदगी हो, दुर्भावना का कीड़ा हो! और जहाँ स्वार्थ का हा हाकार हो, परमार्थ की पुकार न हो!

* * *

धर्म और पंथ

सदाचार और संयम धर्म का सूक्ष्म रूप है, जो अन्दर रहता है। और साम्प्रदायिक क्रियाकाण्ड तथा वेष-भूषा उसका स्थूल रूप

बाहर नहीं। अतएव जीवन-सुधार के लिए सच्चरित्रता का आरम्भ अपने अन्दर में होना चाहिए, बाहर के स्थूल क्रिया-काण्डों में नहीं।

* * *

अन्तर्मुख धर्म

जब तक धर्म अन्तर्लीन रहता है, तब तक अखण्ड, स्थिर एवं सजीव रहता है। परन्तु ज्यों ही यह अंदर से निकल कर बाहर के आपा-तिलक, जनेऊ, दाढ़ी, चोटी माला मठ और मंदिर, मस्जिदों में पहुँच जाता है, त्यों ही खण्ड-विखण्ड एवं निर्जीव होने लगता है। धर्म को जीवित रखना है, तो उसे बाहर की ओर प्रवाहित न कर अन्दर की ओर प्रवाहित करो।

* * *

धर्म का मूल

बाह्य धर्माचरण में देश, काल और समाज की परिस्थिति के कारण कितना ही क्यों न परिवर्तन हो सब क्षम्य हो सकता है। परन्तु, धर्म का मूल रूप आत्मा-विजय है, राग द्वेष का संहार है; उसकी उपेक्षा किसी भी दशा में क्षम्य नहीं हो सकती है।

* * *

सम्प्रदाय भी पवित्र जीवन के लिए संघर्ष नहीं करता, अपितु कदाग्रह की अपवित्रता से लड़ता है और धर्म-मूढ़ जनता को बर्बाद करता है।

*　　　*　　　*

धर्म का मर्म

मनुष्य! तेरा धर्म तुझे क्या सिखाता है? क्या वह भूले भटके लोगों को राह दिखाना सिखाता है? सब के साथ समानता का, भ्रातृ-भाव का, प्रेम का व्यवहार करना सिखाता है? दीन-दुखियों की सेवा-सत्कार में लग जाना सिखाता है? घृणा और द्वेष की आग को बुझाना सिखाता है? यदि ऐसा है, तो तू ऐसे धर्म को अपने हृदय के सिंहासन पर विराजमान कर! पूजा कर! अर्चा कर! इसी प्रकार का धर्म विश्व का कल्याण कर सकता है। ऐसे धर्म के प्रचार में यदि तुझे अपना जीवन भी देना पड़े, तो दे डाल! हँस-हँस कर दे डाल!!

*　　　*　　　*

अन्तर्दृष्टि

मिसरी की डली का माधुर्य मिसरी में ही है, बाहर नहीं। इसी प्रकार आत्मा का सत्य मनुष्य के भीतर आत्मा में है,

धर्म का प्राण

जीवन से अलग हटा हुआ धर्म अधर्म है और आचार दुराचार। धर्म और आचार का प्रत्येक स्वर जीवन-वीणा के हर सांस के तार पर झंकृत रहना चाहिए।

● ● ●

प्रवृत्ति और निवृत्ति

मनोनिग्रह का अपने-आप में कोई अर्थ नहीं है। हजारों दार्शनिक पुकारते हैं, मन को रोको मन को वश में करो। परन्तु, मैं पूछता हूँ "मन को रोक कर आखिर करना क्या है ?" यदि मन को अशुभ सङ्कल्पों से रोक कर शुभ संकल्पों के मार्ग पर नहीं चलाया तो फिर वही दशा होगी कि घोड़े को गलत राह पर जाने से रोक तो लिया किन्तु वहीं लगाम पकड़े खड़े रहे। उसे ठीक राह पर न डाल सके।

● ● ●

आज का धर्म

आज के मनुष्य के मन को न स्वर्ग का लालच दिखा कर पकड़ा जा सकता है और न नरक का भय दिखा कर। आज

धर्म की पहचान

क्या आपका धर्म आपको व्यक्ति, जाति या संप्रदाय आदि के छोटे-छोटे घेरों से बाहर निकाल कर स्वतंत्र चिन्तन एवं स्वतंत्र मनन करने का अवसर देता है? यदि हाँ, तो आपका धर्म श्रेष्ठ है, उसे पकड़े रखिए, कभी छोड़िए नहीं। वह पवित्र है।

* * *

भला और बुरा

जो भी कार्य करना हो, वह अच्छा है या बुरा? यह जाँचने का एक ही तरीका है। वह यह कि विचार की तराजू पर उसे तोल कर देख लो कि उसमें तेरा स्वार्थ अधिक है या जनता का? यदि तेरा स्वार्थ अधिक पाए, तो बुरा है और यदि जनता का स्वार्थ अधिक पाए, तो अच्छा है।

* * *

धर्म का उद्देश्य

धर्म का उद्देश्य आत्मा के शुद्ध स्वरूप का दर्शन करना है

* * *

अधर्म

क्या यह भी धर्म है ?

मनुष्य ! तेरा धर्म तुझे क्या सिखाता है ? क्या वह मासूम बच्चों को छुरे से घायल करना सिखाता है ? बहन-बेटियों की इज्जत लूटना सिखाता है ? किसी का गला घोंटना सिखाता है ? किसी के घर को आग लगाना सिखाता है ? यदि ऐसा है, तो तू उस धर्म को ठुकरा दे, ठोकर मार कर चूर-चूर कर दे। इस प्रकार के धर्म को एक दिन भी जिन्दा रहने का अधिकार नहीं है।

* * *

सज्जन और दुर्जन

जो व्यक्ति चन्दन के समान दूसरों के सन्ताप को दूर करने वाले हैं वे सचमुच चन्दन ही हैं। इस संसार में बहुत कर्मशील सज्जन भव्यात्माएँ हैं, जो परोपकार के लिए मर्मान्तक कष्ट

का मनुष्य वर्तमान जीवन में ही स्वर्ग और नरक की समस्या का हल देखना चाहता है। अतः उसे वह विचार चाहिए, जो उसे जीवित रहते हुए ही मनुष्य बनाने की यथार्थ प्रेरणा दे सके। क्या आज के धर्म और पन्थ उपर्युक्त समस्या पर ठंडे दिल से कुछ विचार कर सकेंगे ?

* * *

धर्म और मानवता

संसार में वही धर्म श्रेष्ठ है, जो जीवन-धर्म है। जीवन-धर्म का अर्थ है—अहिंसा का, सत्य का, सत्कारिता का, समानता का, करुणा का, बन्धुता का, मानवता का धर्म। जिस धर्म में मानवता को जितना ही अधिक सक्रिय रूप मिलेगा, वह उतना ही श्रेष्ठ एवं जन-कल्याणकारी धर्म होगा। पवित्र जीवन जीना ही जीवन-धर्म का परम लक्ष्य है।

* * *

बनाती है वहाँ अति प्रवृत्ति व्यर्थ के संघर्षों एवं उलझनों को जन्म देती है। जीवन में साधना का सही मार्ग दोनों अतियों के बीच में से यथाप्राप्त द्रव्य क्षेत्र, काल भाव को ध्यान में रखते हुए गुजरता है।

• • •

राम और रावण

शक्ति अपने-आप में कोई बुरी चीज नहीं है। परन्तु शक्ति के प्रभु बन कर रहिए, दास बन कर नहीं। राम शक्ति के प्रभु थे तो रावण शक्ति का दास। शक्ति दोनों के पास थी। शक्ति बुरी नहीं, शक्ति का दास होना बुरा है।

• • •

सब से बड़ा अपराध

एक धर्मप्रेमी डाक्टर से पूछा— 'सब से बड़ा रोग कौन है ?" डाक्टर ने उत्तर दिया। "रोग को रोग न समझना !" और यदि मेरे से पूछो कि 'सब से बड़ा अपराध कौन है ?" तो मैं कहूँगा "अपराध को अपराध न समझना।"

• • •

सहने को तैयार रहते हैं। और समय पड़ने पर अपने प्राणों को तृण के समान निछावर कर देते हैं। संतों की भाषा में "वह मनुष्य पापी है, दुर्जन है, जो समर्थ हो कर भी आर्त-जनों का दुःख दूर नहीं करता।"

* * *

यह भी पाप है

किसी पर अत्याचार करना, जैसे एक पाप है, उसी प्रकार अत्याचार को चुपचाप सह लेना, उसके सामने सिर झुका देना भी एक पाप है। अत्याचार का विरोध होना ही चाहिए। अत्याचार का विरोध न करना, उसे बढ़ावा देना है।

* * *

प्रवृत्ति और निवृत्ति

आज से नहीं, हजारों वर्षों से प्रवृत्ति और निवृत्ति में संघर्ष चला आ रहा है। कुछ लोग प्रवृत्ति पर बल देते हैं, तो कुछ निवृत्ति पर। किन्तु, मैं समझता हूँ, यह संघर्ष प्रवृत्ति और निवृत्ति में नहीं है, अपितु अति प्रवृत्ति और अति निवृत्ति में है। अस्तु, जहाँ तक हो सके, साधक को दोनों ओर की 'अति' से बचना चाहिए। जहाँ अति निवृत्ति साधक को जड़ एवं निष्क्रिय

चरित्र-विकास के मूलतत्त्व

उपदेश और आचरण

मैं भूमण्डल पर के सभी धर्म-गुरुओं एवं धर्म-प्रचारकों से एक प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वे जहाँ कहीं धर्म-प्रचार करने जायँ अपने-अपने धर्म-शास्त्रों के साथ अपने सुन्दर आचरणों की पुस्तकें भी साथ लेते जायँ। कागज की पोथियों की अपेक्षा आचरण की पोथियाँ अधिक प्रभावशाली होती हैं।

• • •

इच्छाओं के दास नहीं, स्वामी बनो

मनुष्य! तू अपनी ही इच्छाओं के हाथ का खिलौना बन रहा है। तेरा गौरव इच्छाओं द्वारा शासित होने में नहीं, अपितु अपने को उनका शासक बनाने में है।

• • •

ईर्ष्या

दूसरों की सम्पत्ति, प्रतिष्ठा और सुख-सुविधाओं की तरफ़ ललचाई आँखों से देखने वाला बाहर से कितना ही बड़ा साधक क्यों न हो, अन्दर से चोर है, लुटेरा है, डाकू है।

* * *

पाप और पुण्य

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पहले यदि उसमें भय अथवा लज्जा दोनों में से कोई अनुभूति आए, तो समझ लेना चाहिए कि वह अन्तरात्मा के लिए हितकर नहीं है, वह पाप है।

पाप छुपना चाहता है, अन्धकार चाहता है, और पुण्य? पुण्य प्रकट होना चाहता है, प्रकाश चाहता है—

"गुप्तं पापं, प्रकटं पुण्यम्।"

* * *

मन यदि मटका है, तो शरीर और इन्द्रियाँ बाहर दूर-दूर तक रह कर भी नियन्त्रण में रह सकेंगे, वापस लौट सकेंगे। पतंग कितनी ही दूर आकाश में चढ़ती चली जाय, परन्तु उसकी डोर हाथ में है, तो फिर कोई खतरा नहीं।

* * *

क्रोध की चार परिस्थितियाँ

मनुष्य का निकृष्ट तामसिक-रूप है क्रोध का मार-पीट आदि किसी भी तरह की हानि पहुँचाने में प्रयोग करना। मध्यम-रूप है, गुस्से को व्यक्त करके रह जाना आगे न बढ़ना। इससे अच्छा रूप है क्रोध को अन्दर-ही-अन्दर पी जाना बाहर व्यक्त भी न करना। इससे भी अच्छा रूप है, क्रोध को दबा कर विरोधी से प्रेम करने का प्रयत्न करना। परन्तु, सबसे उत्कृष्ट महान् रूप है कि प्रेम हो प्रेम करना कभी क्रोध या द्वेष के भाव को हृदय में आने ही न देना।

* * *

नम्रता

मनुष्य जितना ही अपने को छोटा समझता है वह उतना ही बड़ा बनता है श्रेष्ठ बनता है। मनुष्य की महिमा अहंकार में नहीं, नम्रता में है अकड़ने में नहीं, झुकने में है।

राम और रावण

राम और रावण में क्या अन्तर है? एक इच्छाओं का स्वामी है और दूसरा उनका दास है, एक जीवन की मर्यादाओं में रह कर मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाता है, तो दूसरा जीवन की मर्यादा को ध्वस्त कर राक्षस कहलाता है।

* * *

शरीर पर मन का प्रभाव

स्वस्थ रहने के लिए तन और मन को अन्दर और बाहर से पवित्र रखने की आवश्यकता है। तन की अपेक्षा भी मन की पवित्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वस्थ और उच्च जीवन की सफलता मन पर निर्भर करती है, क्योंकि शरीर मन का प्रभाव क्षेत्र है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य से भी अधिक आवश्यक है। मन के विकार-युक्त होने से अवश्य ही किसी न-किसी रूप में शरीर भी विकार-युक्त होकर रहेगा। मन के अतर्द्वन्दों की छाया शरीर पर पड़ कर रहती है।

* * *

मन को वश में रखिए

शरीर कहीं भी किसी भी काम में लगा रहे। परन्तु, मन अन्दर में आत्मा के केन्द्र से सम्बन्धित रहना चाहिए। यदि

विडम्बना

इधर अंट-संट जो चाहा वही अपथ्य खाते जाना और उधर वैद्य या हकीम से दवा माँगते रहना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? इधर पाप-पर-पाप करते जाना और उधर भगवान् से क्षमा-पर क्षमा माँगते रहना कहाँ की धार्मिकता है?

* * *

बाहर-भीतर एक समान

अरे मनुष्य! तू दुराव क्यों करता है? तू जैसा है वैसा ही बन! अन्दर और बाहर को एक कर देने में ही सच्ची मनुष्यता है। यदि मानव अपने को लोगों में वैसा जाहिर करे, जैसा कि वह वास्तव में है, तो उसका बेड़ा पार हो जाय।

* * *

वाणी नहीं आचरण

स्वामी रामतीर्थ परमहंस ने ठीक ही कहा है कि "शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक जोर से बोलते हैं।" अतएव संसार के कर्म साधको! तुम चुप रहो, अपने आचरण को बोलने दो। जनता तुम्हारे उपदेश की अपेक्षा तुम्हारे आचरण के उपदेश को सुनने के लिए अधिक उत्कंठित है।

* * *

"नीच होइ सो झुक पिये, ऊँच पियासा जाय।"

सरोवर के मधुर जल को पीने के लिए तन कर खडे न रहो, जरा नीचे झुको।

* * *

यह या वह ?

तुम एक तरफ़ ससार के गदे भोग-विलास भी चाहो और दूसरी तरफ आत्म साक्षात्कार भी, ईश्वरीय दर्शन भी, तो दोनों काम एक-साथ कैसे हो सकते हैं ? पशुत्व और देवत्व की एक साथ उपासना नहीं की जा सकती। दोनों में से एक का मोह छोड़ना ही होगा। यह तुम्हारी योग्यता पर है कि तुम किस का मोह छोडना चाहते हो ?

* * *

ऊपर की ओर देखिए

इधर-उधर कहाँ गड्ढों में भटक रहे हो ? अधो-मुख न होकर ऊर्ध्व मुख बनिए और चोटी पर पहुँचिए। याद रखिए, नीचे अधिक भीड़ है, गन्दगी है। ऊपर का स्थान खुला है, स्वच्छ है। वहाँ जीवन का आनन्द अच्छी तरह उठाया जा सकता है।

* * *

विडम्बना

इधर अंट-संट जो भाया वही अपथ्य खाते जाना और उधर वैद्य या हकीम से दवा माँगते रहना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? इधर पाप-पर-पाप करते जाना और उधर भगवान् से क्षमा-पर क्षमा माँगते रहना कहाँ की धार्मिकता है?

* * *

बाहर-भीतर एक समान

अरे मनुष्य! तू दुमाहरा क्यों करता है? तू जैसा है वैसा ही बन! अन्दर और बाहर को एक कर देने में ही सच्ची मनुष्यता है। यदि मानव अपने को लोगों में वैसा जाहिर करे, जैसा कि वह वास्तव में है, तो उसका बेड़ा पार हो जाय!

* * *

वाणी नहीं आचरण

स्वामी रामतीर्थ परमहंस ने ठीक ही कहा है कि 'शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक जोर से बोलते हैं।' अतएव संसार के धर्म साधको! तुम चुप रहो, अपने आचरण को बोलने दो। जनता तुम्हारे उपदेश की अपेक्षा तुम्हारे आचरण के उपदेश को सुनने के लिए अधिक उत्कण्ठित है।

* * *

ब्रह्मचर्य

धन की सुरक्षा के लिए क्या उसे सुन्दर सोने की तिजोरी में रक्खा जाय ? इस प्रश्न का जो उत्तर है, वही ब्रह्मचर्य और शृंगार के सम्बन्ध में है। जहाँ मर्यादा-हीन उत्तान शृंगार-वासना की आग को प्रदीप्त करना है, वहाँ ब्रह्मचर्य सुरक्षित नहीं रह सकता।

* * *

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य जीवन का अग्नि-तत्त्व है, तेज है। उसका प्रकाश, उसका प्रताप जीवन के लिए परम आवश्यक है। भौतिक और आध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार का स्वास्थ्य ब्रह्मचर्य पर अवलम्बित है।

ब्रह्मचर्य का अभिप्राय शरीर की अन्तिम साररूप धातु, वीर्य रक्षा और पवित्रता ही नहीं है, वह मन, वाणी और शरीर तीनों की पवित्रता है। ब्रह्मचर्य की साधना मन, वचन और कर्म से होनी चाहिए। मन में दूषित विचारों के रहने से भी ब्रह्मचर्य की पवित्रता क्षीण हो जाती है। बाहर में भोग का त्याग होने पर भी वह कभी-कभी अन्दर जा बैठता है। अतः

अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है कि बाहर छोड़ी हुई भोग-वस्तुएँ कहीं अन्दर न घुस जायें।

• • •

अनुशासन

एक कठोर सदा जागृत रहने वाले पहरेदार के समान अपने प्रत्येक शब्द और कार्य पर कड़ी निगरानी रखो। देखना कहीं भूल न होने पाए! अनुशासन जीवन का प्राण है। अपने छोटे-से-छोटे कार्य और व्यवहार पर कठोर नियन्त्रण रक्खो।

• • •

कोमलता बनाम कठोरता

अखिल विश्व की कोमल ममता मन में इतनी ठसाठस भर गई है कि अपने प्रति कोमलता को कहीं जगह ही नहीं रही है।

• • •

त्याग की ऊँचाई

त्याग, आत्मा की वह ऊँचाई है, जहाँ शरीर और इन्द्रियों की आवाज नहीं पहुँच सकती। और मन की आवाज भी वहाँ

सुनाई नहीं दे सकती। आत्मा के गभीर नाद में और सब ध्वनियाँ क्षीण हो जाती हैं।

* * *

अपनी दुर्बलता दूर कीजिए

आप का पतन आप की दुर्बलता में है और आप का उत्थान आप की सबलता में है। आप अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं को जितना ही दूर करेंगे, उतने ही मानवता के विकास-पथ पर अग्रसर होते जाएंगे।

* * *

प्रलोभन

जब मनुष्य का प्रकाशपूर्ण हृदय प्रलोभन के अन्धकार से आच्छादित होने लगता है, तो वह धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य के विचार से सर्वथा शून्य हो जाता है। जीवन-पथ में काँटे मिलें, तो कोई बात नहीं, परन्तु चिन्ता है फूलों के बिछे होने की।

* * *

सच्चा त्याग

त्याग का अर्थ किसी वस्तु को छोड़ देना मात्र नहीं है। त्याग का सच्चा अर्थ है, वस्तु को हाथ से छोड़ देने के साथ-साथ मन से भी छोड़ देना।

जब तक आसक्ति दूर न हो निष्काम भाव न आए, तब तक त्याग खिसकता है—

"त्याग न टिके रे, वैराग्य बिना।"

* * *

मन की सीमा बाँधो

मन को खुला छोड़ दोगे, तो वह कहीं जाकर न रुकेगा। उस की सीमा कहीं न आएगी। आत्मा द्वारा उसकी सीमा बाँधने का प्रयत्न करो। जो अपने मन की सीमा नहीं बाँध सके, वे रावण, दुर्योधन, कंस और कूणिक हुए। जिन्होंने सीमा बाँध ली वे महावीर बुद्ध और गाँधी हुए।

* * *

दान

जितना अधिक आपको मिले उतना ही अधिक तीव्र गति से आप दूसरों को दे डालिए। यह दिव्य सिद्धान्त ही आस-पास के व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के अभाव-ग्रस्त जीवन को मालामाल कर देता है अन्धकार को प्रकाश में बदल देता है।

इस प्रसंग को लेकर किसी पुराने मनीषी ने भी कहा है कि घर में लक्ष्मी बढ़ने लगे और नाव में पानी बढ़ने लगे, तो

चतुरता का काम यह है कि उसे दोनों हाथों से उलीचा जाय! नाव के पानी की तरह संग्रह एक दिन भार बनता है, और वह भार मानव-जीवन की तैरती हुई नाव को एक दिन सहसा डुबा देता है—

"पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम!!

* * *

निन्दक नियरे राखिए

तुम्हारी यदि कोई निन्दा करता है, तो करने दो। तुम उसकी ओर ध्यान क्यों देते हो? क्यों कुढ़ते हो? अपने अन्दर में तलाश करो, यदि तुम्हारे अन्दर सचमुच ही कोई निन्दा-योग्य दोष हो, तो उसे छोड़ दो, अन्यथा प्रसन्न-भाव से निर्भय, निर्द्वन्द्व होकर विचरण करो। किसी के कहने से तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता-बनता।

* * *

श्रम

आज का मनुष्य विश्राम चाहता है, काम से जी चुराता है। समाज और राष्ट्र में सब ओर दरिद्रता का जो नग्न नृत्य

हो रहा है, वह इसी विश्राम-वृत्ति के कारण है। उत्पादन का शोर है, परन्तु जहाँ खटिया पर पड़े-पड़े ऊँघने तथा जम्हाई लेने वाले लोग हों, वहाँ उत्पादन बढ़े तो कैसे बढ़े? उत्पादन, आखिर मनुष्य के हाथ में जन्म लेता है। मनुष्य जब तक जिए, तब तक श्रम करता रहे, श्रम करता हुआ ही मरे। श्रम जीवन है और विश्राम मरण। जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ आलस्य में नहीं जाने देना चाहिए।

• • •

सेवा

आपका हृदय स्फटिक-जैसा स्वच्छ हो। उसमें अजस्र गति से करुणा और सेवा की पवित्र धारा बहती रहनी चाहिए। निष्काम सेवा में जो रस है, आनन्द है, वह अन्यत्र कहाँ?

• • •

अन्तर के रोग

हिंसा असत्य घृणा ईर्ष्या द्वेष दंभ लोभ मोह, और अहंकार आदि मन तथा बुद्धि के रोग हैं।

• • •

जीवन-नौका

जीवन की नौका डूब जाएगी, यदि उसके छेदों को बंद न किया गया तो? भला, आज तक कोई छेदों से जर्जर हुई नाव पर बैठ कर पार पहुँच सका है? हाँ, तो जीवन की नाव में जितने भी काम के, क्रोध के, मद के, लोभ के छेद हैं, सब को बद कर दो और फिर आनन्द से संसार-सागर से पार हो जाओ!

* * *

आत्म-सुधार

प्रिय बन्धुओ! यदि तुम अपनी पत्नी को सीता के रूप में देखना चाहते हो, तो पहले तुम राम बन जाओ! सीता राम के घर मे रह सकती है, रावण के घर में नहीं! और मेरी प्यारी बहिनो! यदि तुम अपने पति को राम देखना चाहती हो, तो तुम पहले सीता बन जाओ! राम सीता के ही पति हो सकते हैं, अन्य किसी निम्न नारी के नहीं!

* * *

नींव की ईंट

भय मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है। भयभीत मनुष्य में गीदड़ की आत्मा निवास करती है जो कुछ दिन इधर-उधर छुपी-छिपी भटक कर मर जाने के लिए है, काम करने के लिए नहीं। जब तक मनुष्य में भय रहता है वह सत्य के पथ पर नहीं चल सकता। न उसमें नैतिकता हो सकती है, न धर्म, न समाज और राष्ट्र का प्रेम। निर्भयता और साहस ही मनुष्य के चरित्र-बल के महल की पहली नींव की ईंट है।

• • •

मन के रोग

ज्वर श्वास खांसी, दुर्बलता कफ वात और शूल आदि शरीर के रोग हैं।

अधिक बोलना असमय में बोलना असत्य भाषण, कटुभाषण चुभती बात और रागद्वेष-वर्द्धक वचन इत्यादि मन के रोग हैं।

• • •

जहाँ राग है, वहाँ द्वेष भी है

राग और द्वेष जुड़वाँ भाई हैं। जहाँ एक है, वहाँ दूसरा अवश्य है। किसी से राग है तो उसके विपरीत किसी से द्वेष

भी है। और यदि किसी से द्वेष है, तो उसके विपरीत किसी से राग भी है। वीतराग पद पाने के लिए दोनों से ही पिंड छुड़ाना आवश्यक है।

*　　　*　　　*

हर्ष और शोक

जब तक हर्ष और शोक की तरगें तुम्हारे मन के सागर में उठ रही हैं, तब तक अपने को बन्धन में समझो। ज्ञानी का ऊँचा दर्जा पाने में अभी देर है।

*　　　*　　　*

अहङ्कार

अधिकार का एक कुख्यात साथी है, जिसका नाम अहंकार है। यही कारण है कि अधिकार पाते ही मनुष्य अपने को असाधारण तथा दूसरों से भिन्न समझने लगता है, अधिकार के मद में झूमने लगता है। धन्य हैं वे, जिनके पास अधिकार है, परन्तु अधिकार का सह-यात्री अहकार नहीं है। अधिकार विनय एवं नम्रता का स्पर्श पाकर ही चमकता है और तभी वह जन-कल्याण करता है।

*　　　*　　　*

बुराई के प्रति जागरूकता

बुराई बुराई है, वह छोटी क्या और बड़ी क्या ? बुराई छोटी है, नगण्य है अतः उपेक्षणीय है—साधक के लिए यह धारणा ही गलत है। कभी-कभी बुराई बिल्कुल छोटे-से सूक्ष्म से बीज के रूप में आती है, समय पाकर वह अंकुरित होती है बढ़ती है, फूलती है फलती है, बड़े वृक्ष के रूप में सब ओर फैल जाती है आस-पास छा जाती है। फिर उसे काटने के लिए कितना श्रम और समय अपेक्षित होता है ? वृक्ष का रस चूसने वाली अमर बेल की तरह बुराई भी धीरे-धीरे फैलकर साधना की आध्यात्मिक भावना का रस चूस लेती है। अतः इसका स्वप्न में भी विश्वास न करो। निरन्तर आत्म-निरीक्षण करते रहो जीवन के पल-पल का हिसाब रखते रहो कि कौन बुराई, कब और किस रूप में अन्दर घुस आई है ? पता लगते ही उसे बाहर निकाल फेंको और भविष्य में बुराई के स्पर्श से बचे रहने का दृढ़ संकल्प करो।

• • •

आत्मानुशासन

एक कठोर जागरूक प्रहरी के समान अपने प्रत्येक विचार, शब्द और कार्य पर कड़ी निगरानी रखो। इसका यही मूल

न होने पाए ? अनुशासन, जीवन का प्राण है। अत: अपने छोटे-से-छोटे कामों पर भी दृढ़ता के साथ अपना अधिकार जमाए रक्खो, अपना शासन चलाते रहो।

*　　　*　　　*

ज्ञान और क्रिया

तैरने की कला

तालाब हो या नदी हो—तट पर खड़े-खड़े हजार वर्ष भी यदि तैरने की कला पर शास्त्रार्थ करते रहो, तो तैरना नहीं आएगा। तैरने की कला के लिए तो जल में कूदना होगा हाथ-पाँव मारने होंगे। उस समय डूबने से बचने के लिए जो भी प्रयत्न होगा उसी से तैरना आएगा।

धर्म के लिए भी यही बात है। यह केवल ज्ञान-गोष्ठियों में शास्त्र करने की चीज नहीं है। उसका सीधा सम्बन्ध आचरण से है। अतः जो महानुभाव धर्म पर बहस करना छोड़ कर उसे आचरण में उतारेंगे, वे अवश्य ही संसार-सागर से तैरने की कला सीख जाएँगे।

मुट्ठी में बन्द मिश्री की डली से मिठास न देने की शिकायत नहीं कर सकते। हाँ मुँह में डालें, चूसें और फिर मिठास न आए, तो शिकायत ठीक है परन्तु यह शिकायत कभी होने की नहीं।

न होने पाए? अनुशासन, जीवन का प्राण है। अतः अपने छोटे-से-छोटे कामों पर भी दृढ़ता के साथ अपना अधिकार जमाए रक्खो, अपना शासन चलाते रहो।

*   *   *

किसना खोलेगा ? यही बात विवेक की आँख और शास्त्र की दूरबीन के सम्बन्ध में है। विवेक-ज्ञान के बिना शास्त्र बिचारा क्या कर सकता है ?

● ● ●

ज्ञान-हीन क्रिया

ज्ञान के बिना जो भी प्रतिलेखन प्रतिक्रमण जप तप अहिंसा आदि की साधना है, वह सब अज्ञान-क्रिया है। अज्ञान क्रिया आस्रव का हेतु है, कर्म-बन्धन का कारण है। उस से निर्जरा और मोक्ष की आशा रखना आकाश-पुष्प की कल्पना है और कुछ नहीं।

● ● ●

आचार-हीन पाण्डित्य

आचार-हीन पाण्डित्य घुन लगी हुई लकड़ी के समान अन्दर से खोखला होता है। रोगन की पालिश बस बाहर से चमका सकती है उसके अन्दर शक्ति नहीं डाल सकती।

● ● ●

मिश्री और फिर मीठी न लगे, ऐसा कभी हो सकता है ? धर्म की मिश्री को भी पुस्तकों की मुट्ठी में बन्द न किए फिरें। उसे आचरण की जिह्वा पर आखिए, फिर देखिए, कितनी शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है।

* * *

ज्ञान और क्रिया

ज्ञान अंक है, तो क्रियाकाण्ड उसके आगे लगने वाला बिन्दु है। अंक के बिना शून्य का क्या मूल्य होता है गणित शास्त्र में ? कुछ नहीं। पहले धन या तिजौरी ? ज्ञान मूल धन है, तो क्रियाकाण्ड की साधना तिजौरी है। पहले अहिंसा और सत्य आदि का ज्ञान होता है और वही बाद में अहिंसा और सत्य के आचरण-स्वरूप क्रियाकाण्ड में उतरता है। ज्ञान का बीज क्रियाकाण्ड में विराट वृक्ष हो जाता है। परन्तु पहले बीज का अस्तित्व तो चाहिए ? आज के जड़ क्रियाकाण्डियों को बड़ी ईमानदारी के साथ ज्ञान का मूल्य आँकना है।

* * *

विवेक और शास्त्र

यदि आप आँख बन्द कर लें, और उस पर दश हजार मील दूर तक देखने वाली दूरबीन लगा दें, तो क्या दिखाई देगा ?

समाज और संघ

१—समाज

२—संघ

३—शिक्षा

४—नारी

समाज

संघर्षों का मूल कारण

आज के दुःखों कष्टों और संघर्षों का मूल कारण यह है कि मनुष्य अपना बोझ खुद न उठा कर दूसरों पर डालना चाहता है। अपना बोझ दूसरों पर डालना अपना काम खुद न करके दूसरों से करवाना, आज के जन-समाज में गौरव समझा जा रहा है। परन्तु, यह सबसे बड़ा अन्याय है अत्याचार है दुराचार है। अपना काम खुद करने में लज्जा किस बात की? अपना काम दूसरों से कराने का हक या तो बीमार का है या अपंग, अपाहिज को। स्वस्थ होते हुए भी अपने काम का बोझ दूसरों पर डालना प्रतिष्ठा नहीं, पाप है।

• • •

और समाज

तू यह न समझ कि तेरी भलाई और बुराई तेरी
गत है, अतः वह तेरे तक ही सीमित है मगरूर है।

समाज

संघर्षों का मूल कारण

आज के दुःखों कष्टों और संघर्षों का मूल कारण यह है कि मनुष्य अपना बोझ खुद न उठा कर दूसरों पर डालना चाहता है। अपना बोझ दूसरों पर डालना, अपना काम खुद न करके दूसरों से करवाना आज के जन-समाज में गौरव समझा जा रहा है। परन्तु, यह सबसे बड़ा अन्याय है, अत्याचार है दुराचार है। अपना काम स्वयं करने में लज्जा किस बात की? अपना काम दूसरों से कराने का हक या तो बीमार को है या अपंग, अपाहिज को। स्वस्थ होते हुए भी अपने काम का बोझ दूसरों पर डालना प्रतिष्ठा नहीं, पाप है।

• • •

व्यक्ति और समाज

मनुष्य! तू यह न समझ कि तेरी भलाई और बुराई तेरी अपनी व्यक्तिगत है, अतः वह तेरे तक ही सीमित है महदूद है।

तेरे प्रत्येक कार्य का प्रभाव विराट संसार में दूर-दूर तक पड़ता है। क्या यह सत्य नहीं है कि एक कोने में कंकर फेंकने से सरोवर की सम्पूर्ण जलराशि तरंगित हो उठती है ?

* * *

समाज-हित

समस्त मानव-जाति एक ही नाव पर सवार है। यहाँ सबके हित और अहित बराबर हैं। यदि पार होंगे, तो सब होंगे, और यदि डूबेंगे, तो सब डूबेंगे। सब का भाग्य एक-साथ है। सब का समान भाव से किया जाने वाला सम्मिलित प्रयत्न ही नाव के सकुशल पार होने में सहायक हो सकता है।

यदि मानव जाति व्यक्तिगत स्वार्थों के आगे झुक गई, तो वह बर्बाद हो जायगी। व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठे बिना आज कहीं भी गुजारा नहीं है।

* * *

अखण्ड मानवता

मनुष्य ! क्या तू अपने ही समानाकृति मनुष्य से घृणा करता है, जाति भेद के नाम पर, देश-भेद के नाम पर, धर्म-भेद

के नाम पर ! सोचो साथी ! ये सब भेद काल्पनिक हैं, मिथ्या हैं ! मनुष्य मनुष्य-मनुष्य में भेद कैसा ? द्वन्द्व कैसा ? घृणा कैसी ? तू तोड़ दे इन भेद की दीवारों को। और भूमण्डल पर विचरण कर चलकर मानवता के गीत गाता हुआ ! श्रेष्ठ मनुष्य वह है जो भेद में भी अभेद के गीत गा सके।

* * *

महापुरुष और जनता

संसार के महापुरुष अबोध जनता का कल्याण करना चाहते थे, उसके अज्ञान को नष्ट करना चाहते थे, परन्तु दुर्भाग्य से जनता उनकी भावना को न समझ सकी, उलट कर उनका विरोध करने लगी। यही कारण है कि सभी महापुरुषों को अबोध जन-समाज की ओर से आज तक भर्त्सना, उत्पीड़न एवं धिक्कार ही मिला है। एक कुत्ता था। उसने चीनी के घड़े में मुँह डाल दिया। इतने में धड़-पकड़ की आवाज हुई। कुत्ते ने भागना चाहा। इसी गड़बड़ में घड़ा फूट गया। घड़े की गर्दनी कुत्ते के गले में रह गई। कुत्ते को कष्ट पाते देख कर दयालु मनुष्य हाथ में लाठी लेकर इसीलिए कुत्ते के पीछे दौड़ा कि यदि लाठी से घड़े की गरदन टूट गई तो आप ही कुत्ता कष्ट से छूट जायगा। कुत्ते ने अपने पीछे लाठी लिये दौड़ते हुए आदमी के अमली

उद्देश्य को न समझ कर उलटा यह समझा कि यह मुझे मारने को दौड़ रहा है। वह भौंकने लगा, तथा और भी जोर से भागने लगा। बात कड़वी अवश्य है, परन्तु आज तक अबोध जनता अपने उद्धारक महा पुरुषों के साथ यही कुत्ते-जैसा व्यवहार करती आ रही है।

* * *

धर्म और समाजवाद

सच्चा मनुष्य वही है, जो अपने परिवार, पड़ौस, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों को ईमानदारी से पूरा करता है। आस पास के किसी भी जीवन की, किसी भी समय, किसी भी तरह की उपेक्षा न हो, यह सामाजिक सन्तुलन है, और यही भारत की पुरानी भाषा में धर्म है और आज की नई भाषा में समाजवाद है।

* * *

नैतिकता का आधार

आज सब ओर से पुकार आ रही है कि नैतिकता नहीं है, ईमानदारी नहीं है। मैं कहता हूँ, नैतिकता और ईमानदारी हो,

तो कैसे हो ! जब कि यहाँ त्याग की भावना ही लुप्त होती जा रही है।

* * *

जनता की मनोवृत्ति

महान् पुरुषों की जीभ आसमान पर है और दुनियादार लोगों के कान होते हैं जमीन पर। अब समस्या यह है कि महापुरुषों की वाणी को दुनियादार लोग सुनें, तो कैसे सुनें !

* * *

विषमता का राज्य

एक तरफ रावलों में मोहन-भोग बह रहे हैं तो दूसरी तरफ भूखे पेट को चना का एक भुना दाना भी नहीं है ! एक तरफ सोने-चाँदी के तारों से गुँथे हुए रेशमी वस्त्र चमचमा रहे हैं, तो दूसरी तरफ लज्जा ढाँपने को फटी पुरानी लँगोटी भी नहीं है ! एक तरफ आकाश को चूमने वाले संगमरमर के महल खड़े हैं, तो दूसरी तरफ कच्ची मिट्टी की जर्जर दीवारों पर घास का छप्पर भी नहीं है ! यह है विषमता, जो देश की शक्ति को,

शान्ति को, गौरव को, प्रतिष्ठा को निगले जा रही है! आज सारी सभ्यता, संस्कृति और कलचर का केन्द्र रुपया हो गया है! आज के युग में मानवता की कोई आवाज नहीं। आज मनुष्य की मुट्ठी गर्म है और उसमें झनकार है अठन्नियों, चवन्नियों, अधन्नों और पैसों की! और इस झनकार में डूब गया है, मानवता और धर्म का मर्म स्वर! यह स्थिति बदलनी होगी! रुपये को सर्वश्रेष्ठता के पद से नीचे उतारना होगा! आज का पूँजीवाद एक अजगर है, जो निगल रहा है गरीब जनता के रोटी-कपड़ों को, दीन-ईमान को! इसके जहरीले दाँतों को उखाड़ डालने में ही भूखी जनता का कल्याण है!

*　　　*　　　*

परिग्रह का अभिशाप

एक ओर, दिन-रात कड़ी धूप और सरदी में तन-तोड़ परिश्रम करने के बाद भी भर-पेट भोजन नहीं मिलता और नंगी जमीन पर तारों की छत के नीचे सोना पड़ता है।

दूसरी ओर, दीन-हीन पद-दलितों का रक्त चूस कर मेवा-मिष्टान्न उड़ते हैं और सोने के गगन-चुम्बी महलों में फूलों की सुगन्धित सेज पर पहर दिन चढ़े तक खर्राटे लेते हैं।

यह अभिशाप परिग्रहवाद का है और जब तक यह दूर नहीं होगा तब तक यह निश्चित है कि संसार में शान्ति का राज्य किसी दशा में भी कायम नहीं हो सकेगा।

•   •   •

जन-मत

सच्चाई का निर्णय बहुमत नहीं कर सकता है। क्या कभी-कभी यात्रियों की विशाल टोलियाँ भी गुमराह नहीं हो जाती हैं? क्या डाकुओं के गिरोह नहीं होते? अधिकतर जनता अज्ञान में होती है अतः उसका बहुमत सत्य की अपेक्षा असत्य की अधिक पूजा करता है।

•   •   •

नया और पुराना

क्या आप को पुराने का मोह है तो पुराने फटे-कटे चिथड़े पहनो पुरानी सड़ी-गली बासी रोटियाँ खाओ। पुराने टूटे-फूटे ध्वस्त खण्डहरों में रहो। क्या आपको नये का मोह है? यदि आपको नये का मोह है तो आम की नई कच्ची केरियाँ चूसो। नव अंकुरित वृक्ष की शीतल छाया में विश्राम करो। बिलकुल नए

आज के जन्म पाए बच्चे को दूकान और दफ्तर का काम सौंप दो। कोई भी विचारक नये-पुराने के मोह में नहीं पड़ता है। वह तो एक ही बात देखता है, वस्तु की द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार उपयोगिता !

पुरानी, किन्तु आज के युग में अनुपयोगी परंपराओं एवं रूढियों से चिपटे रहना धर्म नहीं है। धर्म है, उनको नष्ट कर नई उपयोगी परपराएँ चालू करना। क्या कभी पुराने-से-पुराने घरों को जन-हित की दृष्टि से गिराना धर्म नहीं है ?

* * *

आध्यात्मिक दरिद्रता

किसी भी समाज और राष्ट्र का पतन धन-जन की दरिद्रता के कारण नहीं होता। वह होता है एकमात्र आध्यात्मिक दरिद्रता के कारण। भारत के निवासियो! तुम भले ही अपना और सब कुछ खो देना, परन्तु अपने परपरागत आध्यात्मिक-वैभव को खोकर आध्यात्मिक दरिद्र न बन जाना।

* * *

संघ

संघ

आकाश के सघन बादलों से धरती पर उतरने वाली अकेली बूँद हवा में सूख जाती है या मिट्टी में मिलकर विलीन हो जाती है। न वह स्वयं बह सकती है और न किसी दूसरे को ही बहा सकती है। बहने और बहाने की शक्ति एकमात्र जल-प्रवाह में है, जो एक के पीछे एक आगे रहने वाली छोटी-छोटी बूँदों का संघ है। कोई भी विचारक इस पर से निर्णय कर सकता है कि शक्ति का केन्द्र व्यक्ति नहीं संघ है।

हजारों मील के लम्बे-चौड़े रेतीले मैदान में एक ही वृक्ष हो, उसकी एक ही शाखा हो शाखा पर एक ही पत्ता हो तो कैसा लगेगा ? सर्वथा भद्दा ! और हजारों प्रकार के वृक्षों का एक उपवन हो प्रत्येक वृक्ष हरा-भरा और फूला-फला हो तो कैसा लगेगा ? सर्वथा सुन्दर ! कोई भी विचारक इस पर से निर्णय कर सकता है कि सौन्दर्य का केन्द्र व्यक्ति नहीं, संघ है।

•　　•　　•

प्रकाश से प्रकाश मिलता है

ज्योतिर्मय बनना है, तो किसी ज्योतिर्मय की शरण लो, उसकी सेवा और सत्सग का लाभ उठाओ। पवित्र घृत से भरा हुआ घृत-दीप है, बत्ती भी है, पर प्रकाश नहीं दे रहा है। प्रकाश की योग्यता है, पर वह व्यक्त नहीं है? उसे व्यक्त करना है, तो किसी प्रदीप्त दीपक से भेंट करनी होगी, स्पर्श-दीक्षा लेनी होगी। आत्मा में प्रकाश शक्ति है, परन्तु वह व्यक्त नहीं है। उसे व्यक्त करने के लिए किसी साधक की चरण-शरण में पहुँचना होगा। ज्योंही स्पर्श-दीक्षा की भावना से दीक्षित होंगे, त्यों ही आपका अन्तर्जगत् आध्यात्मिक ज्योति से जगमगा उठेगा!

* * *

सत्संग

गंगा की धार में पड़ कर गन्दा नाला भी गंगा बन जाता है। चन्दन के आस-पास खडे हुए वृक्ष भी सुगन्ध से महकने लगते हैं। कहते हैं, पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है। सग का बडा प्रभाव है! मनुष्य जैसा संग करता है, वैसा ही बन जाता है। वह देखिए सगतरा क्या सूचना दे रहा है? उसका सकेत है कि मैं मिट्टा का पौधा नारगी के सग जोड़ा जाकर

स्वयं नारंगी का वृक्ष बन गया हूँ, और संतरे के नाम से सूचना दे रहा हूँ कि मैं संत से तर गया हूँ। क्या मानव इन चमत्कारों पर कुछ विचार करेगा?

• • •

जौहरियों से

जवाहरात के पारखी जौहरियो! इन कंकर-पत्थरों को रत्न समझ कर बहुत दिन भटक लिए, पागल हो लिए। अब जरा इन चलते-फिरते मानव-तनधारी हीरों की भी परख करो। दुःख है कि तुम अब तक कंकर-पत्थर परखते रहे और इधर न जाने कितने अनमोल रत्न धूल में मिल गए! "वह धनी, धनी नहीं पापी राक्षस है जो सेवा करने योग्य धन रखते हुए भी किसी को भूख से बिलबिलाता हुआ देखता रहे और कुछ भी न करे!"

• • •

नेता नहीं, नेता के निर्माता बनिए

आज का प्रत्येक मनुष्य अधिकार चाहता है पद चाहता है, राजा होना चाहता है। इसके लिए कितना संघर्ष है कितना लड़ाई झगड़ा है; परन्तु राजा न होने की अपेक्षा राजा बनाने

का अधिकार बड़ा है, सब से बड़ा पद है। क्या मनुष्य इस पद का गौरव प्राप्त नहीं कर सकता? नेता होने की अपेक्षा नेता बनाने में सक्रिय भाग लेना कितना बडा गौरव है!

*　　　*　　　*

आचार सब से बड़ा प्रचार

आज कल धर्म-प्रचार की धूम मच रही है। जिधर देखिए, उधर ही प्रचार का तूफ़ान उठ रहा है, कोलाहल हो रहा है। चन्दे-चिट्ठे उघाए जा रहे हैं, और सोने-चादी के गोले फेंक कर मार्ग साफ़ किया जा रहा है। परन्तु, धर्म प्रचार का सर्वश्रेष्ठ मार्ग उसे अपने आचरण में उतार लेना है, उसे अपने जीवन व्यवहार में एकरस बना लेना है।

*　　　*　　　*

शिथिलाचार और संघ

जैसे एक गन्दी मछली तालाब को गन्दा कर देती है, उसी प्रकार एक आचार-हीन भ्रष्ट साधक समस्त समाज को गन्दा और बदनाम कर देता है। संघ के अधिनायकों को इन पतितों से सतर्क रहने की आवश्यकता है।

*　　　*　　　*

गृहस्थ

जैन-धर्म में गृहस्थ का पद कम महत्त्व का नहीं है। वह यदि पुरुष है तो साधुओं का पिता है; यदि स्त्री है, तो साधुओं की माता है। जो सर्वश्रेष्ठ साधु-संघ के भी माता-पिता हैं, उन्हें अपने आचरण में कितना पवित्र उज्ज्वल और महान् होना चाहिए, यह बहुत गम्भीरता के साथ सोचने की बात है।

• • •

रोओ मत, हँसो

आज मुझे एक धनी सेठ मिले। सट्टे में धन के चले जाने पर रो रहे थे। क्या मैं उनसे पूछूँ कि 'आपने कभी किसी को रोटी का दान दिया है? किसी गरीब को तन ढाँपने के लिए गज़-भर का टुकड़ा अर्पण किया है? किसी रोते हुए के आँसू पोंछे हैं? आप के महल की शीतल छाया में क्या कभी किसी को दो घड़ी बैठने का सौभाग्य मिला है? देश या समाज की भूखी मरती संस्थाओं ने आपके धन से क्या कभी थोड़ा-बहुत जीवन पाया है? आपके धन ने आपका यह लोक या परलोक सुधारा है? यदि यह सब नहीं हुआ है, तो फिर उस धन के लिए क्यों रो रहे हो? बिलख क्यों रहे हो? वह

धन नहीं था, ज़हर था ! चला गया, तो ठीक हुआ ! अन्यथा वह तुम्हारी आत्मा की हत्या कर देता !

\# \# \#

दान के चार प्रकार

दानार्थी के पास स्वयं पहुँच कर सम्मान के साथ दान देना, उत्तम दान है।

अपने यहाँ बुला कर दान देना, मध्यम दान है।

माँगने पर दान देना, अधम दान है।

किसी सेवा के बदले में दान देना, अधमाधम दान है।

* * *

संख्या नहीं, गुण

भगवान् महावीर ने और उन्हीं के पथ के यात्री दूसरे मनीषी आचार्यों ने एकमात्र गुणों को महत्त्व दिया है, संख्या को नहीं। वन में एक सिंह का महत्त्व अधिक है, या हजारों गीदड़ों का ?

* * \#

शिक्षा

सच्ची शिक्षा

सच्ची शिक्षा जीवन का प्रकाश है। भला वहाँ व्यक्तिगत स्वार्थों का अन्धकार कहाँ रह सकता है? सच्ची शिक्षा पाये हुए युवक अपनी भूख के लिए नहीं, अपितु जनता की भूख के लिए लड़ते हैं। अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के लिए नहीं समूचे समाज और राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए लड़ते हैं।

• • •

मनुष्य की विशेषता-विचार

मनुष्य का गौरव विचारों का प्रकाश लेकर चलने में है। केवल श्रम और शक्ति के भरोसे कुछ नहीं हो सकता। श्रम और शक्ति में तो भार से बैल और गदहे कहीं अधिक परिश्रमी और मज़बूत होते हैं। परन्तु मालूम है वे हाँके पर चलते हैं? और इस लिए पशु हैं घास खाते हैं। मनुष्य के पास भी यदि

विचारों का प्रकाश नहीं है तो वह "साक्षात्पशु पुच्छविषाण हीन" है। वह हाँका जायगा। लादा जायगा। उसे मनुष्य रूप में जीने का कोई अधिकार नहीं है।

*　　　　*　　　　*

शिक्षा का आदर्श

शिक्षा का अर्थ केवल लम्बी चौड़ी दुरूह पुस्तकें पढ़ लेना और विश्व-विद्यालयों की ऊँची-से-ऊँची उपाधियाँ प्राप्त कर लेना नहीं है। शिक्षा का अर्थ है, आत्मा का विकास, जीवन का विकास, समाज का विकास, और समूची मानवता का विकास।

*　　　　*　　　　*

पाण्डित्य

पाण्डित्य लम्बे-चौड़े पोथी पत्रों में नहीं है, वह है जीवन की अनुभूति में ; यदि कोई सहृदय उसे पा सके तो।

*　　　　*　　　　*

विद्या का उद्देश्य

आचार्य मनु कहते हैं कि 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वह है, जो भौतिक वासनाओं से मुक्ति दिला सके, अन्ध परम्पराओं

सर्व इच्छाओं से छुटकारा दिला सके। स्वतन्त्र रूप से जनहित के सम्बन्ध में सोचना और करना ही एकमात्र विद्या का प्रमुख उद्देश्य है।

• • •

सच्ची विद्या

सच्ची विद्या जीवन में आनन्द लेने की कला सिखाती है; मजदूर की तरह नहीं स्वामी की तरह श्रम करना सिखाती है। प्रतिकूल परिस्थिति से भागना नहीं, अपितु उसको अपने अनुकूल बना लेना ही जीवन की सच्ची विद्या है।

• • •

ज्ञान या अज्ञान !

आज के मनुष्य ने रेशम के कीड़े की भांति अपने ऊपर ज्ञान के नाम से अज्ञान का जाल गूंथ रक्खा है जिस जाल से वह बाहर नहीं निकल सकता !

• • •

विज्ञान का फल

आज की मानव-जाति मौत से खेल रही है, आग पर चल रही है। वह अपनी सारी बुद्धि, सारी प्रतिभा अपने को ही नष्ट करने के प्रयत्न में लगा रही है। विज्ञान की तेज छुरी से प्रकृति की छाती को चीर कर भी मानव ने आज क्या निकाला ? विष, विष और विष ! वह चला था, अमृत की तलाश में ! परन्तु ले आया विष !

* * *

शिक्षा की कसौटी

कौन मनुष्य शिक्षित है, इसकी सच्ची कसौटी यह है कि वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बना है कि नहीं ? अपने नैतिक व्यवहार व आचरण को ऊँचा उठा पाया है या नहीं ? अपने पुराने एवं गलत दृष्टि-कोणों को बदल सका है या नहीं ? उसके आस-पास का मानव समाज सुव्यवस्थित एवं संयत हुआ है या नहीं ? उसमें बुराई से अन्त तक लड़ते रहने का साहस है या नहीं ?

* * *

पण्डित, मूर्ख और महामूर्ख

मूर्ख और पण्डित में क्या अन्तर है ? पण्डित पहले सोचता है और बाद में काम करता है, परन्तु मूर्ख पहले काम करता है

और बाद में प्रतिकूल परिणाम आने पर सोचता है, पछताता है। और जो असफल होने पर बाद में भी नहीं सोचता वह तो महामूर्ख है पशु है उसकी बात रहने दीजिए।

*　　*　　*

मनुष्य और पशु

विचार ही मनुष्यता है और अविचार ही पशुता है।

*　　*　　*

नारी

भारत की नारी

भारत की नारी तप और त्याग की मोहक मूर्ति है, शान्ति और सयम की जीवित प्रतिमा है। वह अधकार से घिरे ससार में मानवता की जगमगाती तारिका है। वह मन के कण-कण में क्षमा, दया, करुणा, सहिष्णुता और प्रेम का ठाठें मारता समुद्र लिए घूम रही है! वह विष के बदले अमृत बाँट रही है! काँटों के बदले फूल बिछा रही है! वह भारत की नारी है, सीता और द्रौपदी की बहिन!

*　　　　*　　　　*

दोष किस का ?

नारी सरस्वती है! सभ्यता के आदियुग में ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप मे उसी ने तो हमें पढ़ना सिखाया था, अ आ इ ई रटाया था! एक, दो, तीन, चार गिनना सिखाया था।

भगवान् ऋषभदेव के द्वारा दिए गए लिपि तथा गणित के प्रकाश को सर्वप्रथम उनकी पुत्रियों ने ही ग्रहण किया था!

आज यदि नारी अज्ञान है, मूर्ख है, तो इसमें उसका दोष नहीं, पुरुषजाति का दोष है! पुरुष-जाति ने अपना फर्ज अच्छी तरह अदा नहीं किया! जिनसे ज्ञान का प्रकाश पाया, उन्हीं की बहनों को उसने अंधकार में रक्खा और अपना स्वार्थ साधा!

• • •

देवियों से

देवियो! मैं तुम्हारे बनाव-शृंगार पर आलोचना नहीं करूँगा, तुम्हारे पहनने-ओढ़ने और बनाव-ठाव पर नुक्ताचीनी नहीं करूँगा! यह सब मूर्खों का काम है, विचारकों का नहीं! तुम अपने को जितना सुन्दर बना सकती हो, बनाओ! यह कोई पाप नहीं है, गुनाह नहीं है! सुन्दरता में तो प्रेम की सुगन्ध रहती है। परन्तु, एक बात का खयाल रखना। कहीं बाहर की सुन्दरता के फेर में पड़ कर अन्दर की सुन्दरता नष्ट न हो जाय! तुम अन्दर और बाहर दोनों ओर से सुन्दर बनो! तुम्हारा तन सुन्दर हो, उससे भी बढ़ कर वचन सुन्दर हो, और इन दोनों से बढ़कर अन्दर में मन सुन्दर हो!

• • •

बहनों से

बहनो ! तुम्हें अलंकार चाहिएँ ? लज्जा, शील, संयम और कर्तव्य-निष्ठा के अलंकार पहनो ! तुम अंधकार में बिजली की तरह चमकोगी ! तुम्हारे प्रकाश से मानव-जगत् में नया प्रकाश भर जायगा ! ये सोने-चाँदी के गहने, हीरे-जवाहरात के अलकार ! ये तुच्छ हैं, भला इन कंकर-पत्थरों को पहन कर क्या प्रकाश प्राप्त करोगी ? अँधकार में जग-मगाती दीपशिखा को कौन-सा अलकार चाहिए ? वह अपना अलकार आप है !

* * *

पुरुष और नारी

ओ पुरुष ! तूने नारी को क्या समझ रक्खा है ? क्या वह भोग-विलास को गुड़िया है, खिलौना है ? क्या तू उसे रेशमी साड़ियों और सोने-चादी के गहनों से जीतना चाहता है ? वह गृह पत्नी है, उसे यह सब नहीं चाहिए, उसे चाहिए प्रेम, अधिकार, आदर और गृहस्थी होने का अभिमान ! यह ठीक है, कि वह आवश्यकता पड़ने पर सुन्दर-से-सुन्दर गहने और वस्त्र माग सकती है। वह सौन्दर्य की पुजारिन है, उसे सुन्दरता से प्रेम है। परन्तु वह, वह भी है, जो आवश्यकता पड़ने पर एक

पल में सब-कुछ निछावर भी कर सकती है ठुकरा भी सकती है। याद है सीता यह सब ठुकरा कर एक दिन नंगे पैरों छाया की तरह राम के पीछे-पीछे किस प्रकार वन-यात्रा को निकल पड़ी थी?

• • •

बिखरे मोती

१—बिखरे मोती

२—इन से भी सीखिए

३—ओ मानव !

४—सन्त

बिखर मोती

पूर्व और पश्चिम

पूर्व और पश्चिम दोनों दो किनारों पर खड़े हुए हैं। पूर्व की संस्कृति मनुष्य को अन्तर्मुख बनाती है और पश्चिम की संस्कृति बहिर्मुख।

पूर्व की संस्कृति का आधार आत्म-निरीक्षण है, और पश्चिम की संस्कृति का आधार है प्रकृति-निरीक्षण। पूर्व की संस्कृति का आराध्य है विराट् चैतन्य देव और पश्चिम की संस्कृति का आराध्य है स्थूल जड़ राक्षस। पूर्व के हाथ में शीतल जल की सुराही है तो पश्चिम के हाथ में जलती हुई लकड़ी।

•　　•　　•

रूप नहीं, गुण देखिए

रूप का क्या देखना, गुण देखिए। कुल का क्या देखना शील देखिए। अध्ययन का क्या देखना प्रतिभा का चमत्कार

देखिए। भाषण का क्या देखना, आचरण देखिए। तप का क्या देखना, क्षमा एवं सहनशीलता देखिए। धर्म का क्या देखना, दया की भावना देखिए!

* * *

मंजिल की ओर

जब तक राह पर नजर है, तभी तक लड़ाई है, झगड़ा है। ज्यों ही मंजिल पर नजर पहुँची नहीं कि सब समाधान हो जाता है। भले लोगो! क्यों मत-मतान्तरों की पगडंडियों पर लड़ झगड़ रहे हो? चले चलो, चले चलो, उसी परम सत्य की चमकती हुई मंजिल की ओर।

* * *

सच्ची दीवाली

दीवाली की अँधेरी रात्रि में दीपक जलाते हैं, और दरवाजे के बाहर या मोरी के ऊपर रख आते हैं। यह कैसी दीवाली? बाहर उज्ज्वल ज्योति जग-मग जग-मग कर रही है और अन्दर अन्धकार भय की हुंकार भर रहा है! प्रकाश पर्व को अन्तर और बाह्य प्रकाश के रूप में मनाना चाहिए।

* * *

मानवता और पशुता

मनुष्य की मनुष्यता का गौरव इसी में है कि वह जो पाए, उससे अधिक दे। यदि अधिक नहीं तो आधा भाग तो अवश्य अर्पण करे। मनुष्य को कमाने के लिए दो हाथ मिले हैं। परन्तु भोजन तो एक ही हाथ से खाना चाहिए। दोनों हाथों से कमाना, एक हाथ से देना और एक हाथ से खाना यह मानवता है। और, दोनों हाथों से खाना पशुता है।

• • •

नेतागिरी

आज जो बड़े हैं समाज के या देश के नेता हैं, उन पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। वे स्वयं दुःख में रह कर ही जनता को सुख वितरण कर सकते हैं। नेता के भाग्य में विष-पान ही लिखा है। जो नेता अमृत पीने वाले हैं उनकी जनता विष पान करती है और जो विष पीने वाले हैं उनकी जनता अमृत पान करती है। समुद्र-मन्थन के समय यदि शिवजी विष-पान न कर लेते तो देवताओं को अमृत-पान किसी भी तरह न प्राप्त होता। विष के बाद ही अमृत का नम्बर है।

• • •

स्वतन्त्रता

स्वतन्त्रता वह अनोखी और अनूठी वस्तु है, जो भूखों मरने की दशा में भी आनन्द देती है और हृदय के कण-कण को गुद-गुदा देती है। पक्षी पिंजरे में सुरक्षित है, आहार आदि के लिए निश्चिन्त है, फिर भी क्यों उन्मन है, उदास है? इसलिए कि आखिर, है तो परतन्त्र ही। वह स्वच्छन्द अनन्त आकाश में उड़ जाना चाहता है, फिर भले ही भूखा रहे तो क्या, प्यासा रहे तो क्या, और किसी जालिम के हाथों मारा जाए भी तो क्या? मैं जब स्वतन्त्र भारतीयों को अपनी-अपनी दाल-रोटी के अधिकार के लिए पुकार मचाता देखता हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है, जैसे इनकी नज़रों में दाल-रोटी का तो कुछ मूल्य है, किन्तु स्वतन्त्रता का कुछ भी मूल्य नहीं। स्वतन्त्र रह कर भूखा मर जाना सिहत्व है, और परतन्त्र रह कर नित नए मोहन-भोग उड़ाना गीदड़पन है।

*　　　*　　　*

ज्येष्ठ और श्रेष्ठ

ज्येष्ठ और श्रेष्ठ में कौन महत्वपूर्ण है? ज्येष्ठ का अर्थ बड़ा होता है और श्रेष्ठ का अर्थ अच्छा। कुछ लोग कहते हैं कि हम

धन में बड़े हैं। मैं कहता हूँ—धन में बड़े हो परन्तु मन में श्रेष्ठ भी हो या नहीं? तन-धन का उपयोग परोपकार के लिए होता है, तब उसमें श्रेष्ठत्व आता है। कुछ लोग कहते हैं—हम बुद्धि में बड़े हैं। मैं कहता हूँ—बुद्धि में बड़े हो पर बुद्धि में श्रेष्ठ भी हो या नहीं? जब बुद्धि का उपयोग मानव-समाज के कल्याण के लिए होता है तभी उसमें श्रेष्ठत्व आता है। एक-दो क्या दुनिया-भर के ज्येष्ठत्व से श्रेष्ठत्व महान् है। अतः ज्येष्ठत्व के लिए नहीं श्रेष्ठत्व के लिए प्रयत्न करो। वस्तुतः श्रेष्ठत्व में ही ज्येष्ठत्व की मान-प्रतिष्ठा है।

• • •

पाप और पापी

मनुष्य! तुझे पाप से घृणा करने का अधिकार है परन्तु पापी से घृणा करने का अधिकार नहीं है। पाप कभी धर्म नहीं बन सकता; परन्तु पापी तो पाप को छोड़ कर कल क्या आज ही अभी ही पवित्र पुण्यात्मा धर्मात्मा बन सकता है!

• • •

बोलिए कम, सुनिए अधिक

चतुरता अधिक बोलने में नहीं है, अपितु चुपचाप अधिक सुनने में है। मनुष्य को समझने में जल्दी करनी चाहिए और सुनने में देर। 'क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति।'

* * *

घर और वन

क्यों वन वन भटक रहे हो ? क्या वन में हर बन जाना है, घर में नहीं ? यदि घर में नहीं बन सके, तो वन में ही क्या बनना है ?

* * *

हंस या काग ?

हंस मोती चुगते हैं और काग ? तुम निर्णय कर लो कि तुम्हें हंस बनना है अथवा काग ?

* * *

सन्देश

सत्य के लिए झगड़ने वाले नहीं, अड़ने वाले बनो।

* * *

इनसे भी सीखिए !

जीवन-कला

बरसने वाले बादलो ! गरजो फिर गरजो और गरजो ! तुम्हारा गर्जन मुझे प्रिय लगता है। मैं तुम्हारा गर्जन सुनूंगा, हजार बार सुनूंगा; क्योंकि तुम बरसने वाले बादल जो हो ! कुछ करने वाले बोलें यह पाप नहीं है। यह तो उनका अधिकार है।

परन्तु अरे ! तुम क्यों गरज रहे हो ! क्यों कान फोड़ रहे हो ? तुम्हें बरसना नहीं है और व्यर्थ ही गरज रहे हो ! जिस बोलने के पीछे करना नहीं है वह बोलना भी कभी भला है ?

अरी ! ओ नन्ही बदलिया ! चुपचाप आई बरस गई ! कुछ भी तो नहीं बोली ! आने की सूचना तक नहीं दी ! एक ही झटके में जमीन पर पानी ही पानी कर दिया ! तू धन्य है प्रशंसनीय है। तू जीवन की कला का मर्म पहचानती है। चुप चाप बरसना ही तो जीवन का सौन्दर्य है। यह कार्य भी तो

शतश: वन्दनीय है; जो बोलता नहीं, कर डालता है। वाणी की अभिव्यक्ति क्रिया में करता है।

अरे! तुम कैसे बादल? न गरजते, न बरसते! चुप-चाप अनन्त आकाश के पथ पर व्यर्थ ही अर्ध-मृत कीड़ों की तरह रेंगते, लुढ़कते, क्षत-विक्षत होते चले जा रहे हो! यह भी क्या जीवन! न किसी को आने का पता, न जाने का पता! जीवन का अर्थ है, गौरवपूर्ण अभिव्यक्ति। अज्ञात जीवन भी कोई जीवन है?

*   *   *

चार प्रकार के फूल

एक फूल है, जो सुन्दर अवश्य है, किन्तु सुगन्धित नहीं। दूसरा सुगन्धित है, किन्तु सुन्दर नहीं। तीसरा न सुन्दर है, न सुगन्धित। चौथा सुन्दर भी है और सुगन्धित भी।

भगवान् महावीर कहते हैं, मनुष्य को चौथे प्रकार का फूल बनना चाहिए। उसमें सौन्दर्य होना चाहिए और सुगन्ध भी। उस का बाहर का आकार-प्रकार सौम्य होना चाहिए और भीतर सत्य और अहिंसा, प्रेम आदि की सुगन्ध होनी चाहिए। जब तक जीवित रहे, महकता रहे, मरने के बाद भी महक फैलती

१६। मानव-पुष्प की यही विशेषता है कि वह मुरझाने और झड़ जाने के बाद भी अपनी महक को शाश्वत काल के लिए छोड़ जाता है।

• • •

महावीर-भवन से

मैं देख रहा हूँ दिल्ली के महावीर-भवन से गाँधी-मैदान में जामुन के आसपास बच्चों की भीड़ जमा हो रही है और सब की नज़र पके हुए काले काले जामुनों पर है। पत्थर उठाया जाता है, निशाना साध कर फेंका जाता है और फिर कुछ देर इन्तज़ार की जाती है कि वह जामुनों के गुच्छे को लगता है या नहीं? यदि ठीक दूर पर जाकर लग जाता है तो जमीन पर पके जामुनों की भेंट कर दिया जाता है और यदि नहीं लगता बरबस असफल हो जाता है तो दूसरा पत्थर उठा कर मारा जाता है और फिर वही प्रतीक्षा! मनुष्य को भी ऐसा जीवन बनाना है। यह जीवन एक खिलाड़ी का जीवन है। पासा फेंक दिया और बस, अब दौर का इन्तज़ार है कि वह अनुकूल पड़ता है या प्रतिकूल? मनुष्य प्रयत्न करे पुरुषार्थ करे और फिर परिणाम की प्रतीक्षा करे! सफल हो तो ठीक! यदि असफल हो तो फिर प्रयत्न कर पुरुषार्थ करे! मनुष्य का अधिकार प्रयत्न करने का है और

अपने मनोऽनुकूल फल पाने में नहीं ! बच्चों के हाथ में पत्थर का फेंकना है, फल के लग जाना नहीं।

* * *

अमर आकांक्षा

मेरे जीवन की यह अमर आकांक्षा है कि मैं अगरबत्ती की भाँति जन-हित के लिए तिल-तिल जल कर समाप्त हो जाऊँ और आसपास के जन-समुदाय को सेवा की सुगन्ध से महका दूँ।

* * *

विरोध में भी एकता

देखो दूर काले बादलों में, बिजली किस प्रकार इधर उधर रह-रह कर झम-झमा रही है ? जल में भी अनल ! पानी में भी आग ! है न आश्चर्य की बात ? परस्पर विरोधी द्वन्द्वों में भी समन्वय का यह सुन्दर सन्देश प्रकृति की मूल देन है, यदि कोई भाग्य-शाली समझ सके तो !

* * *

गाय का उपकार

गाय भूसा खाती है और देती है दूध ! मनु[illegible] है और देता क्या है ? मल। गाय भी गोबर के[illegible]

है, पर उससे घर के आँगन पुतते हैं, चौके लिपते हैं। सूखा गोबर बन कर रोटी पकाता है, राख बन कर मनुष्य द्वारा जूठे किये गए पात्रों को मांज कर शुद्ध, पवित्र बनाता है। और मनुष्य का मल क्या करता है? ——। मानवी माता थोड़े दिन दूध पिलाकर माता बनती है और फिर जीवन-भर सेवा कराने का अधिकार प्राप्त कर लेती है। परन्तु गाय जीवन-भर दूध पिलाती है। जरा सोचिए तो गौ माता को अपने मानव-पुत्र से कितनी सेवा लेने का अधिकार है? इस प्रश्न का सही उत्तर मानव जाति के भाग्य का फल ऐसा ही होगा।

• • •

इनसे भी सीखिए

मयूर से कुछ सीखना है? यदि सीखना हो तो यह सीखो कि लोग उसकी सुन्दरता को देखते हैं और वह अपने पैरों की कुरूपता को देखता है।

• • •

इनसे भी सीखिए

चींटियों से मिलकर चलना भी सीख लो। देखो न किस प्रकार वह पंक्ति में संगठन बनाये अपनी मंजिल की ओर रेंग

रही हैं ? चुपचाप विना शोर मचाए किस शान्ति के साथ यात्रा तय हो रही है ?

* * *

इनसे भी सीखिए

जब आपकी छड़ी आपके हाथ में होती है, तो उपदेश करती है। क्या ? यही कि मैं बेजान होकर भी तुम को बल देती हूँ, सहारा देती हूँ। और तुम जानदार होकर भी कभी दुर्बलों को बल एव सहारा देते हो या नहीं ?

* * *

इनसे भी सीखिए

मनुष्य को आस पास के वातावरण में गुलाब बन कर रहना चाहिए। वह जीवन और खिला हुआ गुलाब, जिसके प्रत्येक आचार और विचार से एक मीठी, दिल और दिमाग को तर करने वाली महक निकलती रहे !

* * *

इनसे भी सीखिए

आकाश में घटाएँ घुमड़ रही हों, वर्षा हो रही हो और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चल रही हो, तब मोर खुशी में आकर नाचता है और बोलता है। सबकी खुशी में ही उसकी

सुखी है। जहाँ घटाओं को देख कर हजारों किसानों के दिल धड़कने लगते हैं, वहाँ मोर का मन भी उछल पड़ता है। क्या कभी आप भी इसी प्रकार दूसरों की खुशी में खुश हुए हैं, नाचे हैं, और बोले हैं?

• • •

इनसे भी सीखिए

आप की घड़ी ठीक टाइम नहीं देती तो क्या आप उस सुधारवान को चिन्ता नहीं करते? अवश्य करते हैं। इसी प्रकार यदि आपका मस्तिष्क ठीक तरह नहीं सोचता-विचारता, तो क्या यह चिन्ता की बात नहीं है? अप्रामाणिकता चाहे घड़ी की हो किसी आदमी की हो या स्वयं अपने मस्तिष्क की ही हो वह तत्काल सुधार चाहती है।

• • •

शरीर का अन्त

हाथी क्या कर रहा है? अपने सूँड में धूल भरता है और सिर पर डाल लेता है। क्या मतलब है इसका? अपने शरीर को जितना हो चाहो चाहे सजाओ मोटा-ताजा बनाओ, आखिर मिलना है इसे मिट्टी में ही।

• • •

ओ मानव !

अन्धकार से प्रकाश की ओर

मनुष्य ! तेरे चारों ओर गहरा अंधकार है। लोग भटक रहे हैं, आपस में टकरा रहे हैं, और विनाश के पथ पर जा रहे हैं। वस्तुत अन्धकार अपने-आप-में इतना ही बुरा है। क्या तू इस अन्धकार में से बाहर आना चाहता है ! यदि आना चाहता है, तो प्रेम, दया तथा सत्य की अखण्ड ज्योति बनकर आ। आने का मजा तब है, जबकि तेरी ज्योति से अन्धकार का काला मुख भी उजला हो जाय !

* * *

विचार कर

मनुष्य ! यदि तू किसी का पुत्र है, तो विचार कर, क्या तूने पुत्र का कर्तव्य पूरा किया है ? तूने पिता का कैसा आशीर्वाद लिया है ? अपने ऊँचे आचरण से उनके गौरव को कितना

ऊँचा उठाया है? यथावसर सेवा के रूप में कब कितना समय लगाया है? क्या तुझे देख कर बड़े पिता प्रसन्न होते हैं? इधर उधर प्रशंसा करते हैं? उनके मन के किसी कोने में तेरे कारण कोई आँसू की बूँद तो नहीं उभर रही है?

मनुष्य! यदि तू किसी का पिता है तो विचार कर, क्या तूने पिता का कर्तव्य पूर्ण किया है? अपनी सन्तति को शिक्षण दिया है? उसे मानवता का सन्देश सुनाया है? उसे कितना ऊँचा उठाया है? देश का योग्य नागरिक बनने के लिए तेरी ओर से उसे कितनी प्रेरणा मिली है?

मनुष्य! यदि तू किसी का भाई है तो विचार कर क्या तूने भाई का कर्तव्य पूरा किया है? भाई के सुख में सुख और दुःख में दुःख यही है भाई के भाईपन को जाँचने की कसौटी। इस कसौटी पर तू कब कितना खरा उतरा है? अपने स्वार्थों का भाई के लिए कब कितना बलिदान किया है? अपने वैभव में कब कितना साझेदार बनाया है? यदि तू बड़ा भाई है तो क्या कभी तू राम बना है? और यदि तू छोटा भाई है तो क्या कभी लक्ष्मण बना है?

मनुष्य! यदि तू किसी का पड़ोसी है तो विचार कर, क्या तूने पड़ोसी का कर्तव्य पूरा किया है? पड़ोसी के पास तेरी वाणी

की कितनी मधुरता जमा है ? तेरे स्नेह की कितनी पूँजी उसके मन की तिजौरी में सुरक्षित है ? उसके पुत्र को अपना पुत्र और पुत्री को अपनी पुत्री समझा है ? उसकी पत्नी के साथ बहन का-सा शिष्टाचार रक्खा है ? उसके आँसुओं में अपने आँसू, उसकी हँसी में अपनी हँसी क्या कभी मिलाई है ? पडौसी के मान-अपमान को अपना मान-अपमान और पड़ौसी के हानि लाभ को अपना हानि-लाभ समझने में ही सच्चे पड़ौसी का कर्तव्य अदा होता है। जब ऐसा अवसर मिले, तब इस कसौटी पर अपने-आप को कसा कर, परखा कर ?

बहन ! यदि तू किसी की माता है, तो विचार कर, तूने माता का क्या कर्तव्य पूरा किया है ? तूने अपने पुत्र-पुत्रियों से कब कितना प्रेम किया है ? उन्हें कब कितनी धर्म और नीति की शिक्षा दी है ? मोह के कारण भोजन, पात्र एवं अन्य कार्यों में कोई अनुचित मार्ग तो उनके लिए नहीं अपनाया है ? अपनी सन्तान के लिए दूसरों की सन्तानों से डाह और वैर-भाव तो नहीं रक्खा है ? तुम्हारे कारण तुम्हारे अपने बच्चों में, परिवार के दूसरे बच्चों में और आस पास के पड़ौसियों के बच्चों में परस्पर कितना स्नेह, सौजन्य बढ़ा है ? कहीं तुमने अपने किसी बच्चे के कोमल मन पर जाति, व्यक्ति या और किसी प्रकार की ऊँच-नीचता से सम्बन्धित घृणा-भावना का जहर तो नहीं

विवेक किया है ?

बहन ! यदि तू किसी की पत्नी है, तो विचार कर, तू ने पत्नी का क्या कर्तव्य पूरा किया है ? तू ने अपने पति को परिवार के दूसरे लोगों के प्रति गलत धारणाएँ तो नहीं दी हैं ? सास-ससुर के प्रति माता-पिता जैसी ही श्रद्धा भक्ति और सेवा-भावना रखती है न ? स्वच्छता का ध्यान न रख कर भोग-विलास एवं शृंगार की भावना में ही अधिक समय तो नहीं गुजारा है ? घर की परिस्थिति ठीक न होते हुए भी सुन्दर गहने और कपड़ों के लिए पति को तंग तो नहीं किया है ? ननद देवरानी जेठानी और दूसरी पड़ोसिनों के साथ स्नेह सद्व्यवहार का लेन-देन उचित रूप में किया है न ? अपने-आपको जब कभी अवसर मिला था क्या सीता और द्रौपदी के रूप में ढालने की कोशिश की है ? रूठना, कुढ़ना, चढ़ाना और बढ़-चढ़ाना तो तुझे नहीं आता है न ? ताजा गुलाब के फूल की तरह महकना तेरा काम है बस तू अपने पवित्र जीवन की सुगन्ध से आस-पास के वातावरण को महका दे।

मनुष्य ! यदि तू किसी का पति है, तो विचार कर कि क्या तू ने पति का कर्तव्य पूरा किया है ? अपनी पत्नी को सहधर्मिणी समझता है न ? उसके साथ बराबर के सहयोगी मित्र का जैसा व्यवहार करता है न ? उसके स्नेही कोमल मन को

कभी अपने घमंड से या किसी के बहकाए से चोट तो नहीं पहुँचाता है ? अपने मन के पत्नी-सम्बन्धी प्रेम को अपनी विवाहित पत्नी तक ही सीमित रखता है न ? उसको केवल भोग-विलास की पूर्ति का खिलौना तो नहीं समझ रहा है ? पत्नी के सुख-दुःख के साथ अपने अन्दर भी सुख दुःख की अनुभूति कर सका है न ? रोग आदि की भयंकर स्थिति में मन लगा कर दिन-रात सेवा में जुटा रहा है न ? संकट का समय आने पर अपने प्राणों की आहुति दे कर भी पत्नी की लाज बचाने का प्रबल साहस है न ?

मनुष्य ! यदि तू दूकानदार है, तो काले बाजार से बचकर रहना, ग्राहक को धोखा न देना, अपने मुनाफे पर ही नजर न लगाए रखना, ग्राहक की सुविधा और सन्तोष का भी ध्यान रखना, जो बताना वही दिखाना और जो दिखाना वही देना। देखना, कहीं तेरे गलत आचरण से समाज और देश की शान को बट्टा न लगने पाए ?

मनुष्य ! यदि तू शिक्षक या मास्टर है, तो बच्चों का पिता बन कर रहना, उचित शिक्षा के साथ-साथ उचित दीक्षा का भी ध्यान रखना, कहीं पिछड़े-गन्दे-सड़े और छोटे विचार न दे देना। विचार और आचार दोनों ही दृष्टियों से तुझे अपने देश की सन्तानों को ऊँचा उठाने का महान् कार्य सौंपा गया

है। बच्चे कच्ची मिट्टी के पिंड हैं, तू इनमें से राम कृष्ण, महावीर बुद्ध, गाँधी और नेहरू की मूर्तियाँ बना। तुझे इन अज्ञान पशुओं को मनुष्य बनाना है, देव बनाना है। समाज और देश के लिए अच्छे आदमी बनाने का उत्तरदायित्व तुझे मिला है; इसका, कहीं भूल न कर जाना !

मनुष्य ! यदि तू अपने देश के शासन-तन्त्र का कहीं कोई अधिकारी है, तो क्या तू समझता है कि मैं जनता का एक तुच्छ सेवक हूँ ? मेरा काम शासन करना नहीं सेवा करना है ? जनता ने अपने पैसों से मेरे और मेरे परिवार के लिए खान पान पहिनने आदि का सुन्दर प्रबन्ध कर मुझे अपनी सेवा के लिए नियुक्त किया है ? तू किसी से घूस तो नहीं लेता है ? किसी पर धौंस तो नहीं जमाता है ? अपने काम का व्यर्थ का भार तो नहीं समझता है ? किसी विशिष्ट व्यक्ति परिवार, जाति या धर्म आदि की अनुचित तरफदारी तो नहीं करता है ?

मनुष्य ! यदि तू मनुष्य है तो तेरा काम कठोर श्रम करके अपने जीवनोपयोगी साधन प्राप्त करना है। दयानतदारी और ईमानदारी ही तेरा सबसे बड़ा गुण है। पशुओं या राक्षसों की तरह किसी से कुछ छीन लेना अथवा लूट लेना तेरा धर्म नहीं है।

मनुष्य को चाहिए कि वह रोगड़ की तरह न बन । पर भी

क्या साहस कि जरा सकट या विरोध की हवा का झोंका आए, और दीपक की तरह बुझ गए ? फिर अन्धकार-ही-अन्धकार ! प्रकाश का कहीं चिन्ह तक भी नहीं। मनुष्य को तो प्रज्वलित दहकता अगारा होना चाहिए, जो तूफानी हवाओं के थपेडों से भी बुझे नहीं, प्रत्युत और अधिक धधक उठे, महानल का विराट् रूप प्राप्त कर सके।

* * *

ऊँचे उड़ो

अपने अन्दर अनन्त ज्ञान, अनन्त चैतन्य तथा अनन्त शक्ति का अनुभव करो। तुम भोग विलास के कोड़े बन कर रेंगने के लिए नहीं हो। तुम गरुड़ हो, अनन्त शक्तिशाली गरुड़ ! तुम उड़ो, अपने अनन्त गुणों की अनन्त ऊँचाई तक उड़ते चले जाओ।

* * *

द्विभुजः परमेश्वरः

मानव ! तेरा ईश्वर न पत्थर में है, न लकड़ी में है, न आग में है, न पानी में है, न आकाश में है और न मिट्टी की मूरत में है। वह तो तेरे अन्दर है, तेरी नस-नस में है। अपना ईश्वर तू

अपने-आप हो तो है ! तेरे से अलग दूसरा ईश्वर कौन है ? कोई नहीं ! तुझे कुछ शास्त्रकारों ने 'द्विभुज परमेश्वर' कहा है। हाँ समझ ? दो हाथ वाला ईश्वर ! देख, तेरा ईश्वरत्व कहीं तेरी गलतियों से मिट्टी में न मिल जाय ?

• • •

उबलते रहो

अरे ! हृदय में कुछ बल है या नहीं ? बल है तो बड़वानल की तरह समुद्र की अपार जलराशि में रह कर भी उबलते रहो, बुझो नहीं। यह भी क्या उबाल कि गर्म दूध की तरह उबल पड़े और जल के कुछ छींटों से ठंडे होकर बैठ गए ?

• • •

ओ मानव !

ओ मानव ! तू इस दुनिया के पीछे क्यों पागल है ? क्यों बेचैन है ? यहाँ रहने के लिए तेरे पास दो-चार साँसों के सिवा और है ही क्या ? इस क्षण-भंगुर जीवन के प्रति कैसा मद और कैसी ममता ? कैसा राग और कैसा द्वेष ?

किस ओर देखना है ?

यदि तुम अपने मन के कोष में दोषों को जमा करना चाहते हो, तो अपने गुणों की ओर देखो, और यदि गुणों को जमा करना चाहते हो, तो अपने दोषों की ओर देखो ! विचार लो, तुम्हें क्या पसन्द है ?

* * *

अतिथिदेवो भव

ओ मानव ! जब कोई जरूरतमन्द तेरे द्वार पर आए, तो हृदय से उसका स्वागत कर । भारतीय संस्कृति अतिथि को अतिथि नहीं, भगवान् मानती है । अतिथि की सेवा ईश्वर-भाव से करो, इसी में जीवन की सफलता है ।

* * *

तृष्णा

ओ मानव ! तेरे मन का गड्ढा क्या कभी भर सकता है ? ससार में परिग्रह की सीमा है, धन, सम्पत्ति एव सुखोपभो- के साधन गिने हुए हैं । और तेरे मन की तृष्णा ? अरे, असीम है असीम ! क्या असीम को ससीम से भरा

है कभी ? क्या मिट्टी का ढेला आकाश के घर को भर सकता है ? क्या धधकती आग में ईंधन डालने से वह बुझ सकती है ? नहीं कभी नहीं तीन काल में भी नहीं ! तुम्हें अपने मन के घरे को छोटा बनाना चाहिए। तुम्हें अपनी आवश्यकताओं का क्षेत्र संकुचित करना चाहिए। मन की भूख संग्रह से नहीं मिट सकती। वह तो मिटेगी सन्तोष के द्वारा त्याग के द्वारा। आग के बुझाने के लिए पानी चाहिए ईंधन नहीं।

• • •

सन्त

सन्त

सच्चा सन्त नख से लेकर शिख तक शीतल रहता है। उसके मन के कण-कण में अहिंसा, दया और करुणा की सुगन्ध महकती रहती है। उसकी ज्ञान-चेतना प्रात काल सोकर, अँगड़ाई लेकर, तन कर खड़े हुए मनुष्य के समान सदा जागृत रहती है।

* * *

सच्चे साधु

सच्चा साधु कष्ट देने वाले को भी द
अपने काटने वाले कु
मार्ग पर चलने वा
व्यवहार करते हैं।
समझते हैं। इसके

जान पर कोई भी मनुष्य उन्हें कष्ट नहीं देना चाहता; क्योंकि वह जानता है कि पीठ में तो दर्द है ही। आँखों में भी तकलीफ क्यों दी जाय ?

* * *

ते धन्याः

स्वार्थ की अपेक्षा सेवा अधिक मूल्यवान् है। धन्य हैं वे महानुभाव जो सेवा के लिए स्वार्थ का बलिदान करते हैं या कर सकते हैं।

* * *